सिस्टर निवेदिता

राष्ट्रीय जीवनचरित

सिस्टर निवेदिता

वसुधा चक्रवर्ती

अनुवाद
सुरेन्द्र अरोड़ा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

1

लोकोपकार के लिए जन्म

एक मान्य समालोचक ने वर्षों पहले लिखा था, "यदि हमारे देशवासियों को कहीं भावात्मक समानता मिलती है, तो वह आयरलैंड के अवसादपूर्ण साहित्य में, क्योंकि वे भी हमारी ही तरह थके-हारे लोग थे, जो संघर्ष करते रहने के बावजूद असफल होते रहे थे।" ऐसी ही परिस्थितियां थीं, जिनमें आयरलैंड के स्वतंत्रता संघर्ष ने पिछली दो पीढ़ियों के भारतीयों को आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया। संभवतया वे यही परिस्थितियां थीं, जिन्होंने मार्गरेट नोबल को भारतीय परंपरा के प्रति आकर्षित करने के साथ साथ उसे भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका जन्म भारतवासियों पर उपकार करने के लिए ही हुआ था। उसके दादा-दादी और नाना ने ब्रिटिश शासन से अपने देश को स्वतंत्र कराने के लिए संघर्ष किया था। उसके दादा जॉन नोबल उत्तरी आयरलैंड में बेसलियन चर्च के पादरी थे, किंतु अपने देश की स्वतंत्रता के लिए इंग्लैंड के चर्च के विरुद्ध संघर्ष करने में भी यह बात उनके आड़े न आ सकी। चौदहवीं शताब्दी में नोबल परिवार स्काटलैंड से आयरलैंड चला आया था। जॉन ने मार्गरेट एलिजाबेथ नीलस से विवाह किया था, किंतु पैंतीस वर्ष की आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। सैमुअल रिचमंड उनकी चौथी संतान था, और उसने अपनी मां की सहायता करने के लिए इच्छा न होते हुए भी अपना कारोबार शुरू कर दिया। उसने अपना विवाह पड़ोस में रहने वाली लड़की मेरी इज़ाबेल हेमिल्टन से कर लिया। उनकी पहली संतान मार्गरेट का जन्म 28 अक्तूबर, 1867 को डंगानन, काउंटी टायरोन में हुआ। प्रामाणिक सूत्रों से पता चलता है कि उसके जन्म के साथ ही उसकी मां ने उसे ईश्वर-सेवा के प्रति समर्पित कर दिया था। एक वर्ष बाद सैमुअल और मेरी ने अपने जीवन की दिशा को बदलने का फैसला किया और वे अध्ययन और समाज-सेवा में जुट गए। अपनी बच्ची को उसकी दादी की देखरेख में सौंपकर वे इंग्लैंड चले गए। वहां से वे मैनचेस्टर में जा बसे, जहां सैमुअल धर्म-शास्त्र का अध्ययन करने के साथ साथ फैक्ट्री के मजदूरों और वहां के अन्य व्यक्तियों को इकट्ठा करके उन्हें उपदेश भी देता। उपदेशक के रूप में अपनी

जीविका अर्जित करने के लिए उसे घोर परिश्रम करना पड़ा। चौंतीस वर्ष की अल्प आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। अपने पीछे वह पत्नी मेरी, दो पुत्रियां—मार्गरिट और मेरी तथा एक पुत्र रिचमंड छोड़ गया था। मेरी बच्चों को लेकर अपने पिता हैमिल्टन के पास लौट आई। मार्गरिट ने अपने पिता से सेवा की भावना ग्रहण की थी, उसके दादा ने अपने देश के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था, और उन्होंने ही मार्गरिट के मन में देश-प्रेम की भावना जगाई। इसके बाद मार्गरिट और मेरी को शिक्षा ग्रहण करने के लिए हैलीफेक्स कालेज भेज दिया गया। वहां वे दोनों पहले कुमारी लारेट और उसके बाद कुमारी कोलिंस के कठोर किंतु कुशल नियंत्रण में रहीं। ईसाई मत से संबंधित कुछ मूलभूत प्रश्न इस समय मार्गरिट के मन को उद्वेलित कर रहे थे, किंतु कुमारी कोलिंस के स्नेहपूर्ण व्यवहार ने उसे गंभीरतापूर्वक सोचने की शक्ति प्रदान की। हैलीफेक्स में शिक्षा ग्रहण करते समय मार्गरिट की रुचि संगीत, कला और प्राकृतिक विज्ञानों में भी जागी। वहां उसने 1884 में सत्रह वर्ष की आयु में अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद उसने कैस्विक में अध्यापन कार्य आरंभ कर दिया और फिर कुछ दिनों बाद वह रैक्सम में पढ़ाने लगी। रैक्सम एक खनन केंद्र था। एक अध्यापिका होने के बावजूद मार्गरिट ने खानों में कार्य करने वाले निर्धन लोगों के बीच समाज-सेवा करना पसंद किया। इस दौरान उसकी मुलाकात वेल्स के एक युवा इंजीनियर से हुई और दोनों ने विवाह करने का फैसला कर लिया, किंतु भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। उस युवक की मृत्यु एक गंभीर बीमारी से हो गई और मार्गरिट अकेली रह गई। वहां से वह चेस्टर चली आई। उसकी बहन मेरी लिवरपूल में अध्यापिका थी और उसका भाई रिचमंड वहीं के एक कालेज में पढ़ रहा था। उनकी मां आयरलैंड से उनके साथ रहने के लिए आ गई। मार्गरिट अपने परिवार के निकट संपर्क में रहने लगी और उसने नई शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करना शुरू कर दिया। शिक्षा की इस नई प्रणाली का आविष्कार स्विटजरलैंड के शिक्षा-सुधारक पैस्टालौर्जी और जर्मनी के फ्रोएवेल ने किया था। इस प्रणाली में स्कूल-पूर्व शिक्षण पर अधिक बल दिया गया था। इसके अंतर्गत बच्चों को खेल, व्यायाम, अवलोकन, अनुकरण तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती है। यह प्रणाली अनेक शिक्षाविद् अपना चुके थे और मार्गरिट को भी यह प्रणाली बहुत अच्छी लगी थी। श्री व श्रीमती लॉगमैन तथा श्रीमती डी.लीयू ने उसे 'संडे क्लब' से परिचित कराया, जहां उसकी वार्ताओं और लेखों की बहुत प्रशंसा की गई। इसके बाद श्रीमती डा. लीयू ने उसे लंदन के एक नए स्कूल में अध्यापन-कार्य के लिए आमंत्रित किया। उसने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वह अपनी मां के साथ विंबलडन में रहने लगी। इस स्कूल में उसे अध्यापन के लिए किसी नीरस पद्धति को नहीं अपनाना पड़ा, बल्कि वह बच्चों को अपने-आप खेल और अभ्यास के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने देती थी। इस प्रकार उसने अपनी सांस्कृतिक अभिरुचि के कार्यों को जारी रखने के साथ साथ अपनी जीविका

को शौक के रूप में अपनाया। वह अपने भाई रिचमंड के साथ शेक्सपियर का साहित्य पढ़ती और उस पर चर्चा करती। वह बैटी बंधुओं के साथ परिचर्चा में भी भाग लेती। इसमें से एक भाई कवि और दूसरा पत्रकार था। साथ ही वह आक्टेवियस बैटी के 'विंबलडन न्यूज' के अलावा 'डेली-न्यूज' तथा 'रिव्यू ऑव रिव्यूज' में भी राजनीतिक लेख लिखती थी। इसी संदर्भ में वह 'रिव्यू ऑव रिव्यूज' के सुविख्यात संपादक विलियमस्टैड के संपर्क में आई। उसने 'रिसर्च' नामक एक विज्ञान-पत्रिका में भी लेख लिखे। लंदन पहुंचने के कुछ दिन बाद वह 'फ्री आयरलैंड' नामक एक आयरिश क्रांतिकारी संगठन की सदस्य बन गई और उसकी सभाओं में भाषण देने के साथ साथ उसने दक्षिण इंग्लैंड में इस संगठन के प्रचार-केंद्र बनाए। 'म्युचुअलएड' के विश्व-विख्यात लेखक और सामाजिक क्रांति के विचारक प्रिंस क्रोपोट्किन उस समय लंदन में ही थे। वह संगठन के सदस्यों से मिलने आए। मार्गरेट ने उनके साथ नियमित रूप से संपर्क बनाए रखा और क्रांति से संबंधित कार्य के विषय में उनका मार्गदर्शन प्राप्त करती रही। रूस में उस समय उथल-पुथल मची हुई थी, किंतु प्रिंस क्रोपोट्किन का यह निश्चित मत था कि रूस के अनुभव से सबक लेते हुए प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपना रास्ता खुद तय करना चाहिए। क्रांति देश के अंदर देशवासियों में लाई जानी चाहिए, वह आसमान से नहीं टपकती। मार्गरेट ने उनके इन उपदेशों को गंभीरता से हृदयंगम किया।

1895 के अंत में उसने श्रीमती डी.लीयू से अलग होकर अपना स्कूल खोला, जिसका नाम उसने 'रसकिन स्कूल' रखा। यह स्कूल केवल बच्चों के लिए ही न होकर ऐसे शिक्षकों के लिए भी था, जिनकी अनुसंधान कार्यों में रुचि थी। शिक्षकों में श्री एबेनेजर कुक भी थे, जो बच्चों के लिए चित्र बनाया करते थे। उन्होंने कला के क्षेत्र में जो प्रयोग किए थे, उनसे उन्हें ख्याति मिली थी। मार्गरेट ने उनसे कला की शिक्षा ग्रहण की और उसका यह ज्ञान आगामी वर्षों में भारत में कला और कला-समालोचना का विकास करने में उसके लिए काफी सहायक सिद्ध हुआ। शीघ्र ही साहित्य में भी उसकी रुचि जाग्रत हुई। वह लेडी रिपन के संपर्क में आई। उनका अतिथि-कक्ष कला एवं साहित्य पर विचार-विमर्श करने का केंद्र था। मार्गरेट ने उसे सैसेमी क्लब का रूप देने में सहायता की, जो जार्ज बर्नार्ड शॉ तथा टामस हक्सले जैसे प्रमुख साहित्यकारों और कलाकारों का मिलन स्थल बन गया। इस समय वह अपनी व्यक्तिगत निराशा के क्षणों में सांत्वना ग्रहण करने के लिए हैलीफेक्स की अपनी पुरानी अध्यापिका कुमारी कोलिंस के पास गई और उनसे उसे भरपूर स्नेह मिला। अब वह एक शिक्षक और समाज-सेविका के नाते अपनी राह पर चल निकली थी। साथ ही वह परम सत्य की खोज में जुटकर कला और साहित्य में भी सक्रिय योग देने लगी थी। ये सब प्रयास उसके भावी जीवन में फलीभूत हुए। तब एक ऐसी घटना घटी जिसने उसके जीवन को एक नया मोड़ दिया और उसे भारत आना पड़ा।

2

स्वामी जी से भेंट

नवंबर, 1895 में एक दिन श्री एबेनेजर कुक ने कुमारी मार्गरेट नोबल को लेडी इज़ाबेल मारगेसन के घर पर आमंत्रित किया। वहां एक हिंदू योगी धर्म-चर्चा करने वाले थे। कुमारी नोबल को श्री स्टर्डी, हेनरिट मुलर तथा सैसेमी क्लब के अन्य सदस्यों से यह पता चला कि योगी स्वामी विवेकानंद संयुक्त राज्य अमेरिका के अत्यंत सफल दौरे के बाद इंग्लैंड आए हुए हैं। वहां उन्होंने 1893 में शिकागो में विभिन्न धर्मों की सभा को संबोधित करके अमेरिकियों के दिलों में घर कर लिया था। वह उन दिनों श्री स्टर्डी के घर पर ठहरे हुए थे और लंदन में कुछ व्याख्यान दे चुके थे। कुमारी नोबल ने श्री कुक का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। निश्चित किए गए दिन को आने वाले पंद्रह-सोलह व्यक्तियों के उस समूह में वह भी एक थीं, जिनके सामने स्वामी जी ने इस बात की आवश्यकता पर व्याख्यान दिया कि विभिन्न राष्ट्रों के परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करना चाहिए। दस वर्ष के बाद लिखते हुए भगिनी निवेदिता ने (मार्गरेट नोबल अब इसी नाम से जानी जाने लगी थी) अपनी पुस्तक 'द मास्टर ऐज आई सॉ हिम' में लिखा कि स्वामी जी ने पूर्व के सर्वेश्वरवाद के बारे में बताया कि जो भी इंद्रिय-ग्राह्य व्यापार हैं, वे उस 'एक सत्य' के विभिन्न स्वरूप हैं और जैसा गीता में भगवान ने भी कहा है कि ''जैसे धागे में मोती पिरोए होते हैं, वैसे ही सब मुझमें पिरोए हुए हैं।'' साथ ही ''उन्होंने हमें यह भी बताया कि ईसाई धर्म की भांति ही हिंदू धर्म में भी प्रेम महाभाव है।''

"और उन्होंने हमें यह भी बताया कि हिंदुओं का यह विश्वास है कि मन और शरीर दोनों ही एक तीसरी शक्ति से परिचालित हैं, और वह शक्ति है आत्मा। इस विचार ने मुझे बहुत प्रभावित किया और अगली शीत ऋतु में एक नई दृष्टि से देखने के लिए मुझे प्रेरित किया।"

उन्होंने यह भी कहा कि स्वामी जी ने अपने उस प्रवचन में आत्मा की स्वतंत्रता के आदर्श की बात कही, जो ऊपरी तौर से व्यक्ति के जीवन-लक्ष्य के रूप में मानव-सेवा की पाश्चात्य संकल्पना के विपरीत है। मन में यह शंका भी उत्पन्न हुई कि उनके कथन में

विरोधाभास है, क्योंकि स्वामी जी का चरम लक्ष्य सदा मानवता की सेवा ही रहा था। इससे तो यह प्रतीत होता था कि स्वामी विवेकानंद पश्चिम के बुद्धिवादी श्रोताओं के समक्ष केवल अपने विचार प्रस्तुत करना चाहते थे। मार्गरेट स्वयं उनके उपदेश को समझने का प्रयास कर रही थी, इसीलिए उसने उनके दो प्रवचन और सुने, जो उन्होंने लंदन में अपनी पहली यात्रा के दौरान दिए थे। बाद में मार्गरेट ने 'द मास्टर ऐज आई सॉ हिम' में लिखा भी है कि उसे उनकी उस उक्ति को मानने में कोई भी कठिनाई नहीं हुई जिसमें कि स्वामी जी ने कहा कि :

"उस दृष्टि से कोई भी धर्म पूर्णतया सत्य नहीं होता जैसा कि लोग सामान्यतया मानते हैं, लेकिन फिर भी सच्चे अर्थों में सभी धर्म आंशिक रूप में सत्य होते हैं।"

उनके इस कथन ने कि "ईश्वर वास्तव में निर्वैयक्तिक है, किंतु इंद्रियों के कुहासे के भीतर से देखने पर वह वैयक्तिक लगता है", मार्गरेट के मर्म को छू लिया और उसे अभिभूत कर दिया। मार्गरेट ने उनका यह कथन भी प्रायः मान लिया कि "किसी भी कार्य में निहित भावना स्वयं कार्य की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है।" किंतु उसने उनकी विचारधारा को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया। फिर भी वह उनके चरित्र और अपने विश्वासों तथा उपदेशों के अलावा भी अन्य स्रोतों में सत्य को ढूंढ़ने की तत्परता से इतनी प्रभावित हुई कि उनके इंग्लैंड से प्रस्थान करने के पहले ही वह उन्हें 'गुरु' कहकर संबोधित करने लगी थी। स्वामी जी ने स्वयं स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि उन तक पहुंचने के लिए व्यक्ति को लंबी यात्रा तय करनी पड़ेगी। "किसी को इस बात का दुख नहीं होना चाहिए, कि उन्हें विश्वास दिलाना कठिन है! कहते हुए उन्होंने बताया कि मैंने अपने गुरु (राम कृष्ण परमहंस) से छह वर्ष की लंबी अवधि तक तर्कवितर्क किया और इसका फल यह हुआ कि मैं इस मार्ग से पूर्णतया परिचित हूं।" वह किसी पर भी कोई मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालना नहीं चाहते थे। उन्हें विश्वास शब्द पर आपत्ति थी और तर्क-बुद्धि, विवेक तथा आत्मानुभूति ही उनकी दृष्टि में सत्य-प्राप्ति के साधन थे। भगिनी निवेदिता ने अपने गुरु पर जो पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उनके मन की खिड़की, ईसाई धर्म की उन रूढ़ियों से परे, जो अब उन्हें संतुष्ट नहीं कर सकती थीं, दूसरे ही लोकों के लिए खुल गई थी। उसे लगा कि वह ऐसे विचारों व अवधारणाओं से परिचित हो चुकी है, जो तत्वतः सर्वथा नवीन हैं। इसका एक उदाहरण वह निष्कर्ष था, जो स्वामी जी ने मरुस्थल की मृग-मरीचिका से निकाला था। "पंद्रह दिनों तक उन्होंने यह मृग-मरीचिका देखी थी, और उसे वह हमेशा जल समझते रहे थे। यद्यपि वह अब भी प्यासे ही थे परंतु वह जल उन्हें अवास्तविक लगा था। संभवतया उन्हें पंद्रह दिनों तक यह मरीचिका अब भी दिखाई देती किंतु वे अब इस बात को हमेशा के लिए जान चुके थे कि यह झूठी है।" मार्गरेट का विचार था कि ऐसी अवधारणाएं सदैव शिक्षाप्रद होती हैं। वह इस बात से भी

अत्यधिक प्रभावित हुई कि स्वामी जी ने किसी प्रकार का ज्ञानाडंबर प्रदर्शित नहीं किया और छोटे तथा पतित लोगों का उद्धार करने का कोई दंभ नहीं किया, अपितु उन्होंने सरल शब्दों में ऐसी बातें कहीं, जिनमें समस्त मानव-जाति में निहित श्रेयस के लिए सहज आकर्षण था और इस प्रकार उन्होंने समस्त मानव-जाति को सत्य का दर्शन कराया।

जब वह अप्रैल, 1896 में लंदन लौटे और उन्होंने कुछ यूरोपीय देशों की अपनी यात्रा और दिसंबर में भारत लौटने की अवधि के बीच अपने प्रवचन जारी रखे, तो मार्गरिट नोबल ने उनके अन्य उपदेशों को भी ग्रहण किया। अपनी पुस्तक में उनका यह कहना है कि उन्होंने किसी विशेष धर्म का कभी प्रचार नहीं किया अपितु उन्होंने वेदों, उपनिषदों और भगवद् गीता से प्रेरणा ग्रहण करते हुए केवल उस दर्शन का प्रतिपादन किया, जो कि सभी धर्मों का मूलाधार है। उन्होंने मात्र पदार्थ के रूप में सत्ता की भौतिकवादी व्याख्या का स्वागत किया क्योंकि उसका अभिप्राय यह था कि सत्ता 'एक' ही है, यद्यपि उन्होंने स्वयं उसे ईश्वर कहा। उन्होंने माया को विभ्रम नहीं कहा, बल्कि उन्होंने उसे ऐसी धुंध कहा, जिससे हम वास्तविकता को ढंकने के अभ्यस्त होते हैं, ''क्योंकि हम व्यर्थ में बात करते, ज्ञानेंद्रियों के क्रिया-व्यापार से संतुष्ट होते और इच्छाओं के पीछे भाग रहे होते हैं।'' स्वामी विवेकानंद ने कहा कि, "प्रकृति को माया और मन को; जो इस माया का शासक है, स्वयं ईश्वर जानो।" उन्होंने यह भी बताया, "वेदांत की माया अपने नवीनतम विकसित रूप में उन तथ्यों का सामान्य निरूपण है कि—हम क्या हैं, और हम अपने आसपास क्या देखते हैं। इन सबसे निकल जाना ही 'मुक्ति' है। मनुष्य को प्रकृति का दास नहीं बनना है। स्वामी विवेकानंद वेदांत की इस मीमांसा पर विश्वास करते थे कि 'आत्मा प्रकृति के लिए नहीं बल्कि प्रकृति आत्मा के लिए है'।"

इस प्रकार मार्गरिट नोबल ने यह अनुभव किया कि "शब्द 'माया' से अभिप्राय केवल उस सृष्टि से ही नहीं है, जो इंद्रियों द्वारा बोधगम्य है, अपितु ज्ञान के उस पक्ष से भी है, जो यातनापूर्ण, भ्रामक और परस्पर-विरोधी है।" वह विवेकानंद को पुनः उद्धरित करते हुए कहती है : "यह वास्तविकता है, कोई कल्पना नहीं कि यह संसार मरीचिका रूपी नरक है, कि हम इस सृष्टि के बारे में कुछ नहीं जानते। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि हम इसके बारे में कुछ भी नहीं जानते। स्वप्नावस्था की तरह अर्ध जाग्रत और अर्ध सुप्त होकर अपना पूरा जीवन एक कुहासे से घिरे रहकर बिताते जाना ही हममें से प्रत्येक की नियति है। इसी का नाम दुनिया है।" अतः मार्गरिट इस निष्कर्ष पर पहुंची कि ''माया ऐसी चमकीली, भ्रांतिपूर्ण, अर्ध-सत्य, अर्ध-मिथ्या गुत्थी है, जिसमें कोई आराम, कोई संतोष, कोई ऐसी निश्चिंतता नहीं है, जिसका ज्ञान हमें ज्ञानेंद्रियों द्वारा होता हो या उस मस्तिष्क के द्वारा होता हो, जो हमारी ज्ञानेंद्रियों पर आश्रित है। इसके साथ साथ (वह फिर विवेकानंद की उक्ति को उद्धृत करती है), 'जो इस सृष्टि का रचयिता है, वह परमात्मा के नाम से

जाना जाता है।' इन दोनों अवधारणाओं को साथ साथ रखने से हमें हिंदू-धर्म के उस दर्शन का पता चलता है, जो स्वामी विवेकानंद ने पश्चिम में प्रस्तुत किया था।" मार्गरिट ने स्वामी विवेकानंद के दर्शन को त्याग का मार्ग पाया, जिसके अनुसार कठोर संयम द्वारा और सुख का परित्याग करने से मनुष्य माया को त्याग कर 'आत्मा' के निकट पहुंच जाता है। ऐसा त्याग 'विजय' का ही पर्याय है। स्टीफेंसन का उदाहरण देते हुए मार्गरिट इसे स्पष्ट करती है। स्टीफेंसन कठोर परिश्रम से और सुख-सुविधाओं का परित्याग करके वाष्प-इंजिन का आविष्कार करने में सफल हुआ था। इसीलिए स्वामी विवेकानंद ने चरित्र को सर्वोपरि मानते हुए यह बताया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह असत का प्रतिरोध करे और सत को ग्रहण करे। बौद्ध-धर्म और हिंदू-धर्म में यही अंतर है कि बौद्ध-धर्म अहं को मिथ्या मानता है और अनेक को सत्य मानता है, जबकि हिंदू-धर्म केवल 'एक' को ही सत्य और अनेक को मिथ्या मानता है। विवेकानंद ने यह प्रश्न इस प्रकार हल किया कि 'एक' और 'अनेक' में एक ही सत्य है, जिसको एक ही मन ने अलग अलग समय पर अलग अलग दृष्टिकोणों से अनुभव किया है। सच तो यह है कि स्वामी जी ने वास्तविकता की गहराई तक पैठकर आत्मा के गौरव और शक्ति को खोज निकाला। उन्होंने घोषणा की 'प्रकृति आत्मा के लिए है, न कि आत्मा प्रकृति के लिए।' इसलिए उन्होंने अपने इर्द-गिर्द के लोगों को संबोधित करते हुए आह्वान किया कि वे इस विश्व की सेवा प्रेम-भावना से करें, जो कि दुखों की आग में जल रहा है। मात्र त्याग से ही कोई भी व्यक्ति शरीर की सीमाओं से परे मुक्त-चेतना में अपना विकास कर सकता है। मार्गरिट को यह सत्य स्वीकार करने में समय लगा, यद्यपि उसे आत्म-ज्ञान पहले से ही हो रहा था। प्रेम परमानंद है और अवसाद का आविर्भाव उससे दूर भागना है। अपने में और दूसरे में कोई भेद-भाव करना ही घृणा है। यद्यपि यह सिद्धांत स्वीकार्य था, तथापि यह स्वीकार करने में समय लगा कि परोपकार ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य नहीं है, अपितु जीवन में आध्यात्मिकता का भी महत्व है, उसके बाद बौद्धिक ज्ञान और अंत में शारीरिक तथा भौतिक सहायता भी जीवन के लिए आवश्यक है। जहां पश्चिम के देशों का आग्रह स्वच्छता और स्वास्थ्य-रक्षा के प्रति है और पूर्व के संतों में सौंदर्यानुराग है, वहां सर्वोच्च आध्यात्मिकता संसार किसी प्रकार से सहन नहीं कर सकता। यद्यपि पाश्चात्य संतों ने नियम और संगठन पर जोर दिया, किंतु पूर्व के संतों के भगवे वस्त्र और दारिद्रय भी असंगत नहीं थे। पूर्वी संतों ने ऐसे कई लोगों के उदाहरण प्रस्तुत किये, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर भगवान या मनुष्य की सेवा के लिए समस्त बंधनों एवं प्रतिज्ञाओं को तोड़ दिया। स्वामी विवेकानंद सदैव निर्वैयक्तिक भाव में नहीं रहते थे, अपितु उनके जीवन में ऐसे क्षण भी आए, जब उन्होंने गुरु रामकृष्ण परमहंस और गुरु-पत्नी की चर्चा करते हुए बताया कि गुरु रामकृष्ण की पत्नी ने अपने पति को पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। उन्होंने कहा कि अपने देश में नारी-शिक्षा की योजना

भी उनके ध्यान में है और इस कार्य में मार्गरेट उनकी सहायता कर सकती है। मार्गरेट के लिए यह पहला संकेत था, जिसने उसके जीवन को एक नई दिशा दी। मार्गरेट ने लंदन को सुंदर बनाने की आवश्यकता की चर्चा की और स्वामी जी ने उसका ध्यान उस मूल्य की ओर दिलाया, जो अन्य नगरों को इस काम के लिए चुकाना पड़ा था। इससे मार्गरेट को दूसरे लोगों के दृष्टिकोण के विषय में जानने का अवसर मिला। जब स्वामी जी को मार्गरेट की इस इच्छा की सूचना मिली कि वह स्वामी जी की सहायता करना चाहती है, तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वह अपने देश में जनता की सेवा के लिए वचनबद्ध हैं और वह उसका साथ देंगे, जो इस कार्य में उनकी सहायता करेगा। वह अपने सभी अनुयायियों, भारतीयों तथा गैर-भारतीयों को एक-समान मानते थे। इस समय ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामी विवेकानंद को इस ऐतिहासिक लक्ष्य की पूर्ति में पूर्ण रूप से सफलता मिलेगी। मार्गरेट नोबल की दीक्षा पूर्ण हो रही थी और उसका लक्ष्य भी निश्चित हो रहा था। किंतु उसके लिए यह अवसर उसमें पूर्ण रूप से लिप्त होने का नहीं था।

स्वामी विवेकानंद के भारत लौटने के बाद मार्गरेट और श्री स्टर्डी ने लंदन के वेदांत केंद्र का कार्यभार संभाला। स्वामी विवेकानंद ने इसी बीच स्वामी अभेदानंद को भेज दिया था, जिन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रशंसकों के समक्ष प्रवचन दिए। स्वामी विवेकानंद का अपने देश में भव्य स्वागत हुआ। यह सूचना पाकर लोग अत्यंत प्रसन्न हुए। स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण के अनुयायियों की गतिविधियों को नया रूप देने का कार्य अपने हाथ में ले लिया था। उनके छह यूरोपीय शिष्य उनके साथ भारत आए थे। स्वामी जी ने अपने संन्यासी-बंधुओं से उन सभी का परिचय करा कर हिंदू-धर्म की कट्टरता के बंधनों को तोड़ दिया था। वह जातिवाद और रूढ़िवाद से ग्रस्त भारतीय समाज को एक ऐसे शक्तिशाली रूप में ढालना चाहते थे, जिससे समाज में एकता की भावना जाग्रत हो सके। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने संन्यासी-बंधुओं का एक मठ बनाया। यह एक अत्यंत साधारण शुरुआत थी क्योंकि उनके पास इस काम को शुरू करने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। श्री स्टर्डी ने उन्हें कुछ राशि भेजी। मार्गरेट मठ और इस परियोजना के प्रति सहानुभूति रखने वाले पाश्चात्य देशों के व्यक्तियों के बीच की एक कड़ी थी और उसने मठ के लिए धन इकट्ठा करने का कार्य किया। स्वामी विवेकानंद ने इस दृष्टि से रामकृष्ण मिशन की स्थापना की कि मठ की गतिविधियों की दिशा को एक नया मोड़ देकर उन्हें जन-हित के कार्यों में लगाया जा सके। जो संन्यासी अपने व्यक्तित्व के धार्मिक विकास में पूर्णतया तल्लीन थे, और जिन्हें एकांतवाद ही प्रिय था और जो तीर्थ-यात्राएं किया करते थे, उनकी मानसिकता को परिवर्तित करके उनके मन में जन-कल्याण के प्रति समर्पण की भावना पैदा करना आसान नहीं था। स्वामी जी साधुओं और श्री रामकृष्ण के अन्य अनुयायियों के बीच सफल एवं प्रभावशाली संबंध की स्थापित करना चाहते थे। इसका

मुख्य कारण यह था कि श्री रामकृष्ण के जो अनुयायी संन्यासी नहीं थे, वे मिशन के सार्वजनिक कार्यों को सफलतापूर्वक चलाने में सहायता कर सकेंगे। स्वामी जी इन विषयों के बारे में मार्गरेट को नियमित रूप से पत्र लिखते रहते थे। मार्गरेट को मठ की गतिविधियों की सूचनाएं प्राप्त होती रहती थीं और वह उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी, जब वे महिलाओं की शिक्षा के लिए विद्यालय खोलकर उसके स्वप्न को साकार करेंगे। किंतु स्वामी जी ने 23 जुलाई, 1897 के अपने पत्र में मार्गरेट को लिखा कि गरीब भारत के हितों के लिए उसका कार्य-क्षेत्र अभी भी लंदन ही रहना चाहिए। उसकी भारत आने की योजना पूरी नहीं हो रही थी और अंत में हार कर उसने स्वामी जी को लिखा कि वह यह सीखने के लिए भारत आना चाहती है कि सेवा के माध्यम से आत्मोप्लब्धि कैसे प्राप्त की जाती है। स्वामी जी ने मार्गरेट के इस पत्र का स्वागत किया क्योंकि उसका यह पत्र इस बात का सूचक था कि मार्गरेट ने आखिर दाता की भूमिका को छोड़ दिया है और अब वह एक शिक्षार्थी बनना चाहती है। उसने अपने अहं को पूर्णतया त्याग दिया है और इसलिए उसके भारत आने का यही उपयुक्त समय है। स्वामी जी ने मार्गरेट को एक मार्मिक पत्र में इस बात के प्रति सतर्क किया कि उसे भारत में ऐसे अपिरिचित तथा प्रतिकूल वातावरण में रहना पड़ेगा, जिसमें अंधविश्वास, गरीबी और मानसिक दासता की प्रवृत्ति का बोलबाला है। उन्होंने यह भी लिखा कि उसे अत्यंत प्रतिकूल जलवायु में भी रहना पड़ेगा। स्वामी जी ने उसे सलाह दी कि उसे जन-सेवा के कार्य-क्षेत्र में उतरने से पहले इस विषय में गंभीरता पूर्वक सोच-विचार कर लेना चाहिए। उन्होंने यह वचन भी दिया कि वह जिस कार्य-क्षेत्र को अपनाने का निर्णय करेगी, उसमें वह उसकी भरपूर सहायता करेंगे। स्वामी जी के अगले पत्र ने उसके सामने ऐसे नेता का आदर्श प्रस्तुत किया, जो केवल प्रेम द्वारा निस्वार्थ भाव से पथ-प्रदर्शन करता है। मार्गरेट ने इन पत्रों पर विचार किया और अपना कार्य-क्षेत्र निश्चित कर लिया। निवेदिता के लिए मां को यह बताना कठिन काम था कि वह निकट भविष्य में भारत प्रस्थान करने वाली है, किंतु उसकी मां ने उसका मंतव्य पहले ही जान लिया था। इसलिए उन्होंने विनम्रतापूर्वक उसकी आकांक्षा को स्वीकार कर लिया। मार्गरेट को तैयारी में कुछ और महीने लगे थे। उसने रसकिन स्कूल का कार्य-भार अपनी बहन मेरी को सौंप दिया था और अपने मित्रों—नील हैमंड और ओक्टोवियस बैटी से विदा लेकर समुद्री मार्ग से रवाना हो गई थी। उस दिन वातावरण भीगा भीगा-सा था। उसकी मां, बहन, भाई, ओक्टेवियस बैटी और एबेनेजर कुक ने उसे विदा दी थी। नियति उसे भारत की ओर ले जा रही थी।

3

स्वामी जी के सान्निध्य में

विवेकानंद के शिष्य श्री गुडविन ने जो उनके आशुलिपिक भी थे, मद्रास में मार्गरेट नोबल का स्वागत किया। स्वामी जी भी अन्य लोगों के साथ 18 जनवरी, 1898 को उसके कलकत्ता पहुंचने पर उसका भाव-भीना स्वागत करने के लिए उपस्थित थे। उसके ठहरने की व्यवस्था रामकृष्ण संप्रदाय के कुछ अनुयायियों के पार्क-स्ट्रीट स्थित निवास पर की गई। अगले ही दिन स्वामी जी ने उसे बंगला सिखाने के लिए एक साधू भेजा। इस बीच स्वामी जी की दो अमरीकी मित्र, श्रीमती साराहबुल और कुमारी मैक्लियोड बेलूर में एक मठ और मंदिर बनाने के सिलसिले में आई हुई थीं। इस काम के लिए बेलूर में पहले ही जमीन खरीद ली गई थी। वे मठ और मंदिर के निर्माण का खर्च उठाने को तैयार थीं। श्रीमती बुल और कुमारी मैक्लियोड वहां एक पुराने मकान में रहने लगी थीं। स्वामी जी से मार्गरेट के आगमन की सूचना मिलने पर उन्होंने आग्रह किया कि मार्गरेट उन्हीं के साथ रहे। मार्गरेट दृढ़तापूर्वक अपने-आपको भारतीय वातावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास कर रही थी। बहरहाल वह उनके कहने पर उनके साथ रहने लगी थी। स्वामी जी प्रायः उससे मिलने और चर्चा करने आया करते थे। इस समय उन्होंने समाज-सेवा के लिए अनेक ब्रह्मचारियों को तैयार करने के साथ साथ रामकृष्ण संप्रदाय के बीच जाति और वर्ण-व्यवस्था के बंधनों को तोड़ने का काम शुरू कर दिया था। पहला काम संन्यास की उस सामान्य अवधारणा का खंडन करना था, जिसके अनुसार एक योगी का जीवन-लक्ष्य केवल आत्म-मुक्ति की खोज करना होता है। दूसरा तात्कालिक धार्मिक-रूढ़ियों को मिटाना है। उस वर्ष श्री रामकृष्ण के जन्मोत्सव पर बेलूर में मठ और रामकृष्ण मिशन की औपचारिक स्थापना का समारोह एक ऐसा अवसर था, जिसमें समाज की सभी जातियों और वर्गों के लोगों ने भाग लिया था। लगभग एक महीने बाद स्वामी जी ने मार्गरेट नोबल को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी। इस प्रकार उन्होंने एक विदेशी को रामकृष्ण संप्रदाय का अनुयायी बनाया। अब मार्गरेट का नया नाम निवेदिता था। किंतु व्यक्तिगत स्तर पर उसे संघर्ष के बिना वह सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। स्वामी जी का आग्रह था कि मार्गरेट अपने व्यक्तित्व का उत्सर्ग किये बिना हिंदू-धर्म

की जीवन-पद्धित को अपना ले। किंतु ऐसा करना आसान नहीं था। मागरिट स्त्री-शिक्षा के लिए काम करने का संकल्प लेकर भारत आई थी। स्वामी जी भी उससे यही चाहते थे। किंतु कार्य आरंभ करने के लिए स्वामी जी की ओर से आदेश मिलने में विलंब हो रहा था, जिससे वह व्यग्र हो उठी थी। वास्तव में स्वामी जी चाहते थे कि वह सर्वप्रथम भारतीय आदर्शों के अनुरूप आत्मनिष्ठा से काम करने के लिए अपने-आपको तैयार कर ले। मागरिट नोबल से निवेदिता बनने में उसे अनुपम आनंद की अनुभूति हुई थी। उसी व्यामोहित आह्लाद के क्षणों में स्वामी जी ने उसे बताया कि अब स्त्री-शिक्षा के लिए काम शुरू करने की घड़ी आ गई है। जो ब्रह्मचारी, निवेदिता को बंग्ला पढ़ाते थे, उन्हें चार दिन बाद संन्यास दे दिया गया था और उनका नाम स्वामी स्वरूपानंद रख दिया गया था। निवेदिता ने उल्लेख किया है कि मानवीय कष्टों के प्रति उनके मन में जो अपार सहानुभूति थी, उसने उसके मन पर गहरी छाप छोड़ी थी। उसने उसी ब्रह्मचारी से चिंतन करना सीखा था। यद्यपि अभी वह पूरी तरह स्वामी विवेकानंद जी की इच्छा के अनुरूप नहीं बन पाई थी। उसने स्वामी जी के एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि दीक्षा ग्रहण करने के बाद भी उसके मन से यह भावना समाप्त नहीं हुई कि वह अभी भी ब्रिटिश नागरिक है। इससे यह पता चलता है कि उसने अभी तक अपने अस्तित्व को इस देश में समाहित नहीं किया है। इसके बावजूद वह अपने उस अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी। स्वामी जी उसे बेलूर में मठ और रामकृष्ण मिशन के उद्घाटन अवसर पर कलकत्ता के स्टार-थिएटर में आयोजित सार्वजनिक सभा में ले गए, जहां उन्होंने उसे सार्वजनिक सभा को संबोधित करने के लिए कहा। उसके भाषण से यह प्रकट होता था कि उसे भारत की आध्यात्मिक परंपरा का कितना विशद ज्ञान है। उसके इस भाषण की काफी प्रशंसा की गई थी। स्वामी जी ने सभा में भाषण देते हुए बताया कि भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी परंपराओं के अनुसार ही अपना विकास करे और दुनिया के सामने अपने विचार प्रस्तुत करे। इसके अलावा भारत के लिए यह भी जरूरी है कि वह अपनी जनता की भलाई के लिए पश्चिमी देशों के विज्ञान को सीखे और उसका उपयोग करे। इस तरह स्वामी जी ने निवेदिता का परिचय भारतीय जनता से कराया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस की दिव्य पत्नी शारदा देवी से भेंट उसके जीवन की एक अन्य उपलब्धि थी। पहली बार वह उनसे श्रीमती बुल और कुमारी मैक्लियोड के साथ मिली थी। इन विदेशी महिलाओं का 'मां' से मिलना उन दिनों एक असाधारण घटना थी। किंतु 'मां' उनसे बड़े प्यार से मिली थीं। रामकृष्ण की एक पुरानी सहयोगिनी 'गोपालेर मां' (गोपाल की मां) जो उन्हें मां कहती थी, उन महिलाओं को बेलूर वापस छोड़ने गई। इस प्रकार निवेदिता ने हिंदू समाज तथा रामकृष्ण बंधुत्व में अपना स्थान ग्रहण कर लिया।

किंतु उसका आध्यात्मिक विलयन अभी भी होना शेष था। वास्तव में यह वह प्रक्रिया थी, जिसके अनुसार उसे स्वामी विवेकानंद के साथ अमरनाथ और उत्तरी भारत के अन्य स्थानों की तीर्थ-यात्रा करना पड़ी। 'द मास्टर ऐज आई सॉ हिम' में निवेदिता ने स्वामी

जी के उन आह्लादपूर्ण अनुभवों का वर्णन किया है, जिन्होंने उस पर एक निर्णयात्मक प्रभाव छोड़ा है। नैनीताल में थोड़े समय तक रुकने के बाद स्वामी विवेकानंद और उनके दल के लोग अल्मोड़ा पहुंचे, जहां वे श्री व श्रीमती सेवियर्स के साथ ठहरे। स्वामी जी के दल में स्वामी तूर्यानंद, निरंजनानंद, सदानंद और स्वरूपानंद, श्रीमती बुल, कुमारी मैक्लियोड, अमरीकी दूत की पत्नी श्रीमती पैटरसन तथा निवेदिता थी। निवेदिता के लिए यह कठिनतम समय था, क्योंकि उसे यह अनुभव कराया गया था कि वह अभी भी भारतीय जीवन से पूर्ण रूप से तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकी है। वास्तव में उसका मानसिक तनाव इतना अधिक बढ़ गया था कि श्रीमती बुल को उसकी सहायता के लिए आगे आना पड़ा था। यहां तक कि स्वामी विवेकानंद को घोषणा करनी पड़ी कि वह कुछ दिनों के लिए शांति की खोज में निवेदिता को अपने पर छोड़ देना चाहते हैं। उनकी इस घोषणा का निवेदिता पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसने स्वामी जी की इच्छा के सामने अपने-आपको समर्पित कर दिया। स्वामी जी ऐसे वातावरण में लौटे, जिसमें सर्वत्र शांति फैली हुई थी। स्वामी जी के साथ अमरनाथ की तीर्थयात्रा का ही यह परिणाम था कि निवेदिता ने पूर्णतया हिंदू-जीवन को अपना लिया था। निवेदिता ने स्वामी जी की आस्था को 'शिव' से 'मां' के प्रति परिवर्तित होते हुए देखा, उनका यह आत्मोत्सर्ग इस सीमा तक था कि वह सोचते थे कि प्रत्येक क्रिया-व्यापार मां की इच्छा से होता है और उनमें स्वयं कुछ भी करने की शक्ति नहीं है और वह सार्वभौमिक-शक्ति के साथ एकाकार होकर आत्मतीत हो गए हैं। निवेदिता पर इन सब बातों का गहरा प्रभाव पड़ा। इस बीच ब्रिटिश सरकार के एजेंट ने कश्मीर के महाराजा द्वारा स्वामी विवेकानंद को कुछ जमीन उपहार में देने की अनुमति देने से इंकार कर दिया। इस घटना से निवेदिता बहुत दुखी हुई। यदि यह जमीन उन्हें मिल जाती, तो वह इस पर एक मठ और संस्कृत कालेज बनाते। इस घटना से निवेदिता की आंखें खुल गईं और उसे ब्रिटिश शासन की भारत को परतंत्र रखने की वास्तविक प्रवृत्ति का पता चल गया। वह कलकत्ता लौट आई। स्वामी जी उससे पहले ही 1 नवंबर, 1898 को वहां पहुंच गए थे। वहां आकर निवेदिता ने अपने-आपको हिंदू आचार-विचार के अनुरूप ढाल लिया। इसके परिणामस्वरूप केवल मां शारदामणि ने ही उसकी प्रशंसा नहीं की, जो कि शुरू से ही उसके प्रति दयालु थीं, बल्कि उसने रूढ़िग्रस्त महिलाओं से भी सम्मान अर्जित किया। इनमें से अधिकांश बूढ़ी विधवाएं थीं और वे मां के साथ रहती थीं। निवेदिता के लिए अब काम शुरू करने की वह घड़ी आ ही गई थी, जिसकी उसे सदा से प्रतीक्षा थी। निवेदिता ने स्वामी जी की प्रेरणा से उन लोगों की आदतों और अभिरुचियों का अध्ययन कर लिया था, जिनके बीच उसे काम करना था। क्योंकि उसे लोगों की उन्हीं आदतों और अभिरुचियों के अनुसार अपनी शिक्षा-प्रणाली का विकास करना था। इस सिलसिले में स्कूल की स्थापना की आधार-भूमि तैयार करने के लिए बाग बाजार में श्री बलराम बोस के

निवास-स्थान पर अनेक बैठकें की गईं। स्वामी जी ने स्वयं स्कूल के लिए शिष्यों की व्यवस्था करने में सहायता की। मां ने रविवार, 13 नवंबर को 16, बोसपारा लेन में स्कूल का उद्घाटन किया। पड़ोस की कुछ लड़कियां निवेदिता की प्रारंभिक शिष्याओं में से थीं और जल्दी ही वे और उनकी माताएं निवेदिता के साथ विशुद्ध स्नेह के बंधन में बंध गईं। सिस्टर निवेदिता ने अपने स्कूल में चित्रकला, मिट्टी से मूर्तियां, खिलौने आदि बनाने तथा सिलाई का काम सिखाना भी शुरू कर दिया। निवेदिता स्कूल के कार्य को यद्यपि अपने कार्य-क्षेत्र का अनिवार्य अंग मानती थी, फिर भी उससे अनुरोध किया गया कि वह अपनी गतिविधियों का अनेक क्षेत्रों में विस्तार करने के साथ साथ सार्वजनिक सभाओं में भाषण भी दे। बेलूर मठ में 9 दिसंबर को श्री रामकृष्ण के चित्र की स्थापना के बाद मठ का कार्य सुनियोजित ढंग से आरंभ हो गया। निवेदिता ब्रह्मचारियों या नए दीक्षित-व्यक्तियों को वनस्पति-विज्ञान, चित्रकला, शरीर-विज्ञान की शिक्षा देती तथा उन्हें सिलाई सिखाती थी। वह मिशन की साप्ताहिक सभाओं में भाषण देती एवं ब्रह्म-समाज में शिक्षाशास्त्र पर व्याख्यान देती थी। इसके अतिरिक्त उसने एक अध्यापक-प्रशिक्षण-कक्षा भी खोली, जिसमें अनेक प्रतिष्ठित महिलाओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। उसने एक अमरीकी मिशनरी स्कूल में इतिहास भी पढ़ाया। उसने 13 फरवरी, 1899 को एलबर्ट हाल में 'काली' पर जो भाषण दिया, उस पर काफी विवाद हुआ। उस समय के प्रख्यात वैज्ञानिक और चिकित्सक डा. महेंद्रलाल सरकार भी विशिष्ट व्यक्तियों की उस सभा में मौजूद थे। उन्होंने कहा कि ऐसे समय में जबकि इस प्रकार के अंधविश्वासों को दूर करने के प्रयास किए जा रहे हैं, निवेदिता का 'काली पूजा' का प्रचार करना कहां तक बुद्धिमत्तापूर्ण है। उस सभा में उपस्थित एक व्यक्ति ने उनकी इस आपत्ति का दृढ़ता से विरोध किया, जिसके कारण सभा में खलबली मच गई। इसके बावजूद निवेदिता को कालीघाट मंदिर में 'काली' पर प्रवचन देने के लिए आमंत्रित किया गया। वहां प्रवचन देने से पहले उसने मिनर्वा थिएटर में 'यंग इंडिया मूवमेंट' पर एक प्रेरणादायक व्याख्यान दिया। स्वामी जी और अन्य साधुओं ने यह व्याख्यान सुना। निवेदिता ने कालीघाट मंदिर में जो प्रवचन दिया था, उसमें कालीपूजा की महत्ता पर भरपूर प्रकाश डाला गया था। उसने एल्बर्ट हाल की सभा में उठाई गई सभी आपत्तियों का उत्तर दिया और काली के चरित्र को मां एवं संहारिणी दोनों रूपों में चित्रित किया। ये व्याख्यान सिस्टर निवेदिता की पुस्तक 'काली द मदर' की भूमिका थे। किंतु निवेदिता इस प्रकार की गतिविधियों से संतुष्ट नहीं थी। 1899 में प्लेग फैलने पर उसने लोगों की पीड़ा को दूर करने के लिए जो काम किया, उसकी उसके सभी समकालीनों ने प्रशंसा की। इन प्रशंसकों में कलकत्ता के आर.जी. कार मेडिकल कालेज के संस्थापक डा. आर.जी. कार भी थे। डा. कार ने प्लेग से पीड़ित व्यक्तियों के प्रति निवेदिता की साहसपूर्ण और निःस्वार्थ सेवा की भरपूर प्रशंसा की। इससे उसके आचरण की महानता परिलक्षित होती है।

इसी बीच स्वामी जी के मार्ग-दर्शन में निवेदिता धीरे धीरे उस धरती के आदर्शों के अनुसार अपने को ढालती जा रही थी, जिसको उसने अपनाया था। स्वामी जी के गतिशील संन्यासी-धर्म के आदर्श से प्रेरित होकर उसने पूरी तरह से इसी क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा व्यक्त की। इसके परिणामस्वरूप 25 मार्च को उसे नैष्ठिक-ब्रह्मचारिणी का दर्जा दे दिया गया। नैष्ठिक-ब्रह्मचारिणी से अभिप्राय एक ऐसी ब्रह्मचारिणी से था, जो उस धर्म के कट्टर से कट्टर सदस्य के समान निष्ठावान हो। निवेदिता सभी वर्गों के लोगों से मिलती-जुलती थी। स्वामी जी ने यद्यपि उसे पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी, फिर भी वह चाहते थे कि निवेदिता हिंदुओं के रहन-सहन को पूरी तरह अपना ले। इसके अलावा स्वामी जी ने देश में विदेशियों के प्रति व्याप्त पूर्वाग्रहों की भावना को दूर करने के लिए सक्रिय उपाय किए। इसके साथ साथ उन्होंने निवेदिता को हिंदू-समाज में मान्यता दिलाई। क्योंकि पूर्वाग्रह की भावना मुख्यतया इस बात पर केंद्रित थी कि लोग दूसरी जाति के लोगों के हाथ का भोजन करना पसंद नहीं करते थे, अतः स्वामी जी ने यह प्रयास किया कि उनसे संबद्ध व्यक्ति निवेदिता के हाथ की बनी चाय पियें और खाना खाएं। निवेदिता ने स्वयं लिखा है कि मां शारदामणि ने भी हिंदू-समाज में समाहित होने में उसकी सहायता की। किंतु स्वामी विवेकानंद ने पूर्ण रूप से संन्यासिनी बनने के उसके आग्रह को स्वीकार नहीं किया। बहरहाल स्वामी जी ने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में निवेदिता के कार्य की अत्यधिक सराहना की। लेकिन धन की कमी के कारण उसके इस काम में बाधा पड़ रही थी। वैसे भी स्त्री-शिक्षा का काम जम कर नहीं हो पा रहा था, क्योंकि शिक्षा पूरी होने से पहले ही शिष्याओं की शादी हो जाती थी। दूसरी कठिनाई यह थी कि इस काम के लिए महिला कार्यकर्ताओं की कमी थी। यह अनुभव किया गया था कि केवल विधवाएं ही यह काम निष्ठापूर्वक कर सकती हैं, और उनके रहने और प्रशिक्षण के लिए एक महिला-सदन होना जरूरी है। हारकर इस स्कूल को बंद करना पड़ा था, जिसका निवेदिता को काफी दुख हुआ था।

स्वामी विवेकानंद पश्चिमी देशों की यात्रा की योजना बना रहे थे। स्वामी तूर्यानंद उनके साथ जाने वाले थे और यह तय किया गया था कि निवेदिता को भी व्याख्यान देने के लिए अमरीका के दौरे पर जाना होगा। इस दौरे से उसे धन की प्राप्ति भी होगी। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने उसे यह सलाह भी दी कि वह यूरोप और अमरीका में एक ऐसी संस्था तैयार करे, जिसके सदस्य हर महीने चंदे के रूप में थोड़ी थोड़ी रकम देते रहें। वे 20 जून, 1899 को प्रस्थान करने वाले थे। निवेदिता ने 18 जून की सुबह मां के साथ बिताई और शाम को बेलूर मठ में अपने सम्मान में आयोजित चाय-पान समारोह में भाग लिया। उसके बाद वह दक्षिणेश्वर के मंदिर गई और वहां कई घंटे प्रार्थना और ध्यान में बिताए। मंदिर से जब वह अपने घर लौटी, तो उस समय मूसलाधार बारिश हो रही थी। किंतु शंकाओं और निराशाओं का अनुभव करने के बाद अब उसे काफी शांति मिल गई थी। मां शारदामणि ने स्वामी जी और अन्य संन्यासियों को 20 जून की सुबह अपने घर पर आमंत्रित किया था। इसी दिन मां भी शाम को स्वामी विवेकानंद, स्वामी तूर्यानंद और सिस्टर निवेदिता को पश्चिमी देशों की यात्रा पर प्रस्थान करते समय विदा करने के लिए उपस्थित थीं।

4

आत्मोप्लब्धि

इस विदेश यात्रा का एक परिणाम यह हुआ कि निवेदिता को अपना जीवन मार्ग मिल गया। निस्संदेह उसने एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं समझा कि उसे स्वामी विवेकानंद के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है, किंतु स्वामी जी ने स्वयं उसे अपने विवेकानुसार कर्मरत होने की छूट दे दी थी, अब उसके काम में और अधिक रुचि लेने की उनकी इच्छा नहीं थी। इसका एक कारण स्वामी जी का गिरता हुआ स्वास्थ्य भी था, जिसने उनके मन में लौकिक वस्तुओं के प्रति उदासीनता की भावना पैदा कर दी थी, और उन्हें मां के सान्निध्य में अधिकाधिक शांति मिलने लगी थी। सिस्टर निवेदिता को यह अच्छा नहीं लगा, किंतु इससे स्वामी जी की उदासीनता में और वृद्धि ही हुई। तथापि लंदन की यात्रा के दौरान स्वामी जी ने निवेदिता का पूरा ध्यान रखा। उन्होंने उसे हिंदू-धर्म की मान्यताओं, हिंदू-संतों और अन्य महापुरुषों के बारे में बताया। इस प्रकार उसे केवल हिंदू-जीवन और विचारधारा की शिक्षा ही नहीं मिली, बल्कि उनसे प्रेरणा भी मिली और आगे चलकर यही विचारधारा उसके लेखन में व्यक्त हुई। वह यह समझती थी कि कार्य के माध्यम से स्वामी जी के संदेश को लोगों तक पहुंचाना उसका दायित्व है।

वे 31 जुलाई को लंदन पहुंचे। अन्य लोगों के साथ कुमारी क्रिस्टीन ग्रीनस्टिडेल तथा श्रीमती फुंके ने भी उनका स्वागत किया। वे दोनों अमरीका से विशेष रूप से उनसे मिलने आई थीं। कुमारी ग्रीनस्टिडेल बाद में निवेदिता के कार्य में सहायता करने के लिए भारत आई। इस बार स्वामी जी और उनके दल के लोग निवेदिता के परिवार के साथ ठहरे। उसके परिवार के सदस्यों ने बड़े स्नेह से उनकी आवभगत की। निवेदिता का भाई रिचमंड तो विशेष रूप से स्वामी जी का प्रशंसक था। किंतु इस बार लंदन में उन्हें कुछ निराशा का भी सामना करना पड़ा। इसका कारण यह था कि स्वामी जी के पुराने मित्र और प्रशंसक श्री स्टर्डी और लंदन की पुरानी मित्र-मंडली के कुछ अन्य मित्रों ने भी उनका साथ छोड़ दिया। स्वामी जी 16 अगस्त को अमरीका के लिए रवाना हो गए, किंतु निवेदिता अपनी बहन के विवाह में सम्मिलित होने के लिए वहीं ठहर गई। सितंबर में अमरीका पहुंच कर

निवेदिता स्वामी जी से मिली। वह उस समय रिजले मैनोर के मालिक श्री व श्रीमती लेगेट के निमंत्रण पर रिजले मैनोर में ठहरे हुए थे। स्वामी जी के सहयोगियों के लिए मैनोर एक आनंददायक मिलन-स्थल बन गया, किंतु निवेदिता अपने कार्य के लिए तैयारी करने के लिए उत्सुक थी। वह कुछ समय के लिए एकांत चाहती थी और चोगा जैसी सादी पोशाक पहनने लगी थी। कार्य आरंभ करने से पहले वह स्वामी जी से आशीर्वाद लेने गई। उन्होंने निवेदिता को एक कविता भेंट की, जिसका शीर्षक 'शांति' था। निवेदिता बाहर के छोटे-से घर में रहने चली गई और वहां उसने अपनी पुस्तक 'काली द मदर' पूरी की। उसने अपनी यह पुस्तक भगवान वीरेश्वर को समर्पित की। उन्हीं दिनों स्वामी विवेकानंद ने 'निष्काम-कर्मयोग' की महत्ता के बारे में उसे बताया। उसके लिए यह एक कठोर शिक्षा थी। स्वामी जी ने निवेदिता के सामने शिव की वह अवधारणा रखी, जिसके अनुसार मनुष्य को निष्काम कर्मयोगी बनना चाहिए। साथ ही उन्होंने संत शुक का आदर्श भी प्रस्तुत किया, जिन्होंने चरम-सिद्धि प्राप्त कर ली थी। निवेदिता का कार्य कठिन था, क्योंकि उसे भारत में अपना काम करने के लिए केवल धनार्जन ही नहीं करना था, अपितु अमरीका की जनता को हिंदू-नारीत्व के आदर्शों से परिचित कराना भी था। उसे एक प्रकार से उसी काम को जारी रखना था, जो वर्षों पूर्व स्वामी जी कर चुके थे। स्वामी जी न्यूयार्क चले गए और निवेदिता ने शिकागो के लिए प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर उसने सबसे पहले एक प्राथमिक स्कूल के बच्चों के समक्ष भारत के बारे में एक व्याख्यान दिया। उसने बालक-ईसा की चर्चा की और पुराणों में चर्चित बालक ध्रुव, प्रह्लाद और गोपाल के बारे में बताया। इस प्रकार उसने अपने श्रोताओं के समक्ष उस बाल-ईसा की तुलना में, जिसे वे जानते थे, भारत के धार्मिक ग्रंथों में उल्लिखित विभूतियों के बाल-स्वरूपों का वर्णन किया। उसने अपने श्रोताओं को भारत के भूगोल की भी जानकारी दी। इसके बाद उसने अपने निवास-स्थान पर धर्म-प्रचारकों की एक मंडली के समक्ष 'भारतीय महिलाओं की स्थिति' तथा 'भारत में धार्मिक जीवन' पर व्याख्यान दिए। निवेदिता की व्याख्यानमाला का अगला विषय 'भारत की प्राचीन कला' था और इसके लिए चंदा इकट्ठा किया जाना था। इसी समय स्वामी विवेकानंद शिकागो आ गए और उन्होंने इस व्याख्यान की तैयारी में निवेदिता की सहायता की। स्वामी जी जार्ज हेल के साथ ठहरे हुए थे। निवेदिता का यह व्याख्यान अत्यंत सफल रहा और इससे उसे पचास डॉलर मिले। किंतु इसके अलावा उसे अनेक अनौपचारिक चर्चाओं में भी भाग लेना और अनेक प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। उनमें से अनेक प्रश्न पूर्वाग्रह युक्त और विरोधात्मक होते थे। अपने संवेदनशील-स्वभाव के कारण निवेदिता अकसर निराश हो जाती थी। किंतु उसके निराशा के क्षणों में विवेकानंद ने उपदेश एवं व्यक्तिगत उदाहरण देकर उसमें साहस तथा धैर्य की भावना पैदा की। स्वामी जी स्वयं भी इस समय परीक्षणों एवं कठिनाइयों के दौर से गुजर रहे थे। अब उन्हें यह प्रतीत हो रहा था कि उनका

कार्य तो बहुत बड़ा है, किंतु उनका जीवन बहुत थोड़ा है। स्वामी जी को अमरीका में अन्य वेदांत-केंद्र खोलने के अपने प्रयासों में सफलता नहीं मिली और न ही वह भारत में अपने कार्य के लिए अपेक्षित धन जुटा सके। निवेदिता को भी अपना काम आसान नहीं लगा। वह हिंदू-जीवन-दर्शन के प्रचार के लिए और धन एकत्र करने के लिए विभिन्न केंद्रों में समितियां बनाना चाहती थी। जार्ज हेल की पुत्री मेरी हेल से निवेदिता ने डेट्रायट में स्थापित समिति की मंत्री बनने के लिए आग्रह किया, किंतु उन्होंने इस काम में किसी भी प्रकार का सहयोग देने से इंकार कर दिया। इस प्रकार के अनुभव इस बात के सूचक थे कि उसे अब पराश्रित नहीं रहना चाहिए और व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक उत्तरदायित्व को वहन करना चाहिए। इसके अलावा उसे यह भी नहीं समझना चाहिए कि वह अपने गुरु विवेकानंद की मात्र संदेश-वाहक ही है। निवेदिता ने निराशा के इन क्षणों में सांत्वना प्राप्त करने के लिए कुमारी मैक्लियोड से सहायता मांगी। कुमारी मैक्लियोड ने अपने एक महत्वपूर्ण पत्र में निवेदिता को परामर्श दिया कि उसे अपनी आत्मशक्ति पर निर्भर रहना चाहिए और 'काली' से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। स्वामी जी ने निवेदिता से कहा था कि "सफलता नहीं मृत्यु ही हमारा लक्ष्य है।" स्वामी जी की इस उक्ति को पूरा करने के लिए उसने 'निष्काम कर्म' के आदर्श की पूर्ति का मार्ग अपनाया।

अब निवेदिता कृतसंकल्प होकर अपने अनुष्ठान की पूर्ति में लग गई। वह ऐन अरबर और जैक्सन से मिली। इस भेंट के दौरान अन्य महिलाओं ने नियमित रूप से चंदा देने का वचन दिया। किंतु हर जगह उसका भाग्य इतना अच्छा नहीं था कि उसे सफलता मिलती। डेट्रायट में महिलाओं ने विशेष रूप से चर्च से संबद्ध महिलाओं ने उस पर भारतीय जीवन तथा शिष्टाचार से संबंधित आलोचनात्मक प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उसने भी इन प्रश्नों के तीखे उत्तर दिए। उसने हिंदू-धर्म के रीति-रिवाजों का समर्थन करना अपना कर्तव्य समझा। यहां तक कि उसने तलाक की बुराई को समाप्त करने के उपाय के रूप में बहु-विवाह तक का समर्थन किया, जो आधुनिक संदर्भ में विचित्र लगता है। आलोचना प्रायः इतनी कटु होती थी कि उसे सहन कर पाना आसान नहीं था। फिर भी स्वामी विवेकानंद उसे सांत्वना देते रहे और हिम्मत बंधाते रहे। निवेदिता शिकागो वापस चली गई। वहां वह अनेक स्कूलों में गई और उसने एक हिंदू लड़की को अध्यापकों के प्रशिक्षण विद्यालय में भेजने की योजना बनाई। इस विद्यालय की स्थापना श्री पार्कर नामक सज्जन ने की थी। किंतु निवेदिता की यह योजना सफल नहीं हुई, क्योंकि इस बीच संतोषिनी नामक उस लड़की का विवाह हो गया था। उसके बाद निवेदिता कैनसास नगर, मिनियापोलिस और फिर बोस्टन में कैंब्रिज गई। वहां वह श्रीमती साराहा बुल के साथ ठहरी और भारत के राष्ट्रीय नेता श्री विपिनचंद्र पाल से मिली, जो उन दिनों अमरीका आए हुए थे। निवेदिता के प्रयासों से अमरीका में रामकृष्ण-सहायता संघ की स्थापना हुई। श्रीमती फ्रांसिस एच.

लेगेट को इस संघ की अध्यक्षा और श्रीमती बुल को अवैतनिक राष्ट्रीय मंत्री बनाया गया। श्रीमती बुल नार्वे के सुप्रसिद्ध वायलिन-वादक स्वर्गीय ओल बुल की पत्नी थीं। कुमारी क्रिस्टीन ग्रीनस्टिडेल, संघ की डेट्रायट-समिति की मंत्री बन गईं। कुमारी क्रिस्टीन ग्रीनस्टिडेल इससे पहले लंदन में स्वामी विवेकानंद और सिस्टर निवेदिता से मिल चुकी थीं। इस समिति ने 'बालिकाओं के लिए रामकृष्ण स्कूल की परियोजना' पर तैयार की गई एक पुस्तिका प्रकाशित की। श्री लेगेट ने इस पुस्तिका के प्रकाशन में निवेदिता की सहायता की। श्री लेगेट की पत्नी ने इस परियोजना को आरंभ करने के लिए एक हजार डालर दिए। इस पुस्तिका में नारी-शिक्षा के आदर्शों के बारे में निवेदिता के विचारों का बड़े सुंदर ढंग से प्रतिपादन किया गया है। निवेदिता अपने इन विचारों को जिस प्रकार से व्यावहारिक रूप देना चाहती थी, उसका इस पुस्तिका में विशद वर्णन किया गया है। निवेदिता ने इस परियोजना से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के जो उत्तर दिए थे। उन्हें भी परिशिष्ट के रूप में इस पुस्तिका में शामिल किया गया है। इस समय निवेदिता अपनी पुस्तक 'काली द मदर' को प्रकाशित कराने का प्रयास कर रही थी। इस बीच उसने कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथा पौराणिक चरित्रों पर लेख लिखे, जिनके बारे में वह अमरीकी स्कूलों में व्याख्यान दे चुकी थी। स्वामी जी ने भी इस बीच कुछ व्यक्तियों के रेखाचित्र लिखे। निवेदिता ने मैसाचुसेट्स के जमायका स्थित निशुल्क धार्मिक संघ के तत्वावधान में 'पूर्वी-देशों के प्रति हमारा दायित्व' नामक विषय पर व्याख्यान दिया। यद्यपि विरोध एवं आलोचना के कारण लोग निरंतर उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न करते रहे फिर भी कठिन समय में स्वामी जी हमेशा उसे प्रोत्साहित करते रहे। इस बीच निवेदिता न्यूयार्क चली गई थी और स्वामी जी भी वहां पहुंच गए थे। वहां निवेदिता ने स्वामी जी के प्रवचन सुने और इस बार भी उसे वैसी ही प्रेरणा मिली जैसी कि वर्षों पहले लंदन में स्वामी जी के प्रवचनों को सुनकर मिली थी। निवेदिता ने स्वयं 'हिंदू नारी के आदर्श' तथा 'भारत की प्राचीन कला' नामक विषयों पर व्याख्यान दिए। इन व्याख्यानों से लोग अत्यधिक प्रभावित हुए।

ब्रिटेन के प्रख्यात समाजशास्त्री तथा विचारक प्रोफेसर पैट्रिक गेडेस ने 'पेरिस एक्सपोजीशन यूनीवर्सल' के अवसर पर हुए धर्म-इतिहास सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय संघ के विभिन्न सत्रों के आयोजक के रूप में अपने कार्य में सहायता करने के लिए निवेदिता को आमंत्रित किया। स्वामी विवेकानंद को भी इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया। वह भी निवेदिता के पहुंचने के कुछ समय बाद ही पेरिस पहुंच गए। निवेदिता इससे पहले भी न्यूयार्क में 'इतिहास की समाजशास्त्रीय पद्धति' नामक विषय पर प्रो. गेडेस का व्याख्यान सुन चुकी थी और वह प्रो. गेडेस के 'मनुष्य-जाति पर स्थान-विशेष के प्रभाव' पर किए गए विवेचन से विशेष रूप से प्रभावित हुई थी। निवेदिता ने जिस प्रकार उस विषय को समझा था, उसकी प्रो. गेडेस ने भी सराहना की। किंतु प्रो. गेडेस अपने काम

में निवेदिता से केवल यंत्रवत सहायता ही लेना चाहते थे। इसलिए उसने अनुभव किया कि उसके द्वारा इस काम में कोई सार्थक सहयोग देने की गुंजाइश नहीं है। यद्यपि उसने इस काम को छोड़ दिया, किंतु प्रो. गेडेस और उसके बीच परस्पर सद्भाव का जो संबंध स्थापित हुआ था, वह आगे भी पूर्ववत बना रहा। आगे चलकर उसे अपनी पुस्तक 'द वेव ऑव इंडियन लाइफ' लिखने में प्रो. गेडेस से जो सहायता मिली थी, उसके लिए उसने उनका आभार व्यक्त किया। प्रो. गेडेस ने भी इस बात के लिए उसकी सराहना करते हुए कहा कि भौतिक-परिस्थितियों के विषय में उन्होंने जो विवेचन प्रस्तुत किया था, उसके सामान्य स्वरूप के आधार पर निवेदिता ने अपनी इस पुस्तक में जितनी कुशलता से भारतीय जीवन का ताना-बाना बुना है, वह प्रशंसा के योग्य है। इसी समय डाक्टर जगदीशचंद्र बोस तथा श्रीमती अबला बोस भी पेरिस आए हुए थे। डा. बोस पौधों के जीवन पर किए गए अपने महान अनुसंधान कार्य को मान्यता दिलाने की कोशिश कर रहे थे। निवेदिता ने उनके कार्य में गहरी रुचि ली और अब वे दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए थे। धर्म-इतिहास सम्मेलन में स्वामी विवेकानंद द्वारा दिए गए व्याख्यान अत्यंत महत्वपूर्ण थे। किंतु इसी समय स्वामी जी पर क्लांति और विरक्ति की मनस्थिति हावी हो गई थी। उन्होंने वास्तव में कहा कि उनका जीवन अब अधिक नहीं है, और अब वह आगे काम करने की स्थिति में नहीं हैं। वह अब स्वयं पूर्ण रूप से मां में लीन हो जाना चाहते हैं। इस समय उसने अपने अनुष्ठान को पूरा करने के लिए अनेक योजनाएं बना रखी थीं और वह पूरे उत्साह से अपने कार्य में जुट जाना चाहती थी, किंतु स्वामी जी की इस उदासीनता से वह दुविधा में पड़ गई। उसके दुखी होने का एक कारण प्रो. गेडेस से उसका वैचारिक विरोध होना भी था। उसका स्वास्थ्य गिरता गया और मानसिक शक्ति भी क्षीण होती गई। उसने श्रीमती बुल के निमंत्रण पर कुछ दिन ब्रिटेन में लेनियॉन के निकट पेरोस-गुइरेक में बिताए। यद्यपि वहां रहकर उसे कुछ शांति मिली, तथापि वह स्वामी जी की इस उदासीनता के प्रति क्षुब्ध होती रही। अंत में उसने स्वामी जी को लिखा कि वह उसका मार्गदर्शन करें। अपने उत्तर में स्वामी जी ने इस बात से इंकार किया कि उनमें उसके प्रति उदासीनता की भावना आ गई है। यह भी उन्होंने लिखा कि वह चाहते हैं कि निवेदिता अपने मार्ग पर स्वयं चले। स्वामी जी की इस प्रत्यक्ष उदासीनता ने निवेदिता को और भी अधिक उद्वेलित कर दिया। इसीलिए श्रीमती बुल ने, जो निवेदिता को अपनी पुत्री की भांति प्रेम करती थीं, स्वामी विवेकानंद को वहां आने का निमंत्रण दिया। स्वामी जी श्रीमती बुल को प्यार से 'धीर माता' कहते थे। उन्होंने श्रीमती बुल का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। स्वामी जी से मिलने के बाद निवेदिता के मन से सभी शंकाएं दूर हो गईं। उसने यह अनुभव किया कि स्वामी जी तो केवल यह चाहते हैं कि वह उनसे अलग होकर स्वतंत्र रूप से काम करे। जहां तक स्वामी जी का अपना संबंध है, वह अब थकान-सी महसूस कर रहे थे और जल्दी से जल्दी भारत लौट

जाना चाहते थे। उन्होंने निवेदिता को 'आशीर्वचन' नामक एक कविता सुनाई, जो तब से अब तक भारतवासियों के कानों में शाश्वत सत्य की भांति गूंजती रही है :

मातृ-हृदय और योद्धा की संकल्प-शक्ति
मलयानिल का मदिरमधुर माधुर्य
आर्यों की वेदी पर दीप्तमान उन्मुक्त लौ
का पवित्र सम्मोहन और शक्ति;
ये सभी तभा अन्य अनेक गुण,
कभी किसी पुरातन आत्मा ने
ये स्वप्न नहीं संजोए
तुम भारतमाता के भावी सपूतों के लिए,
गृहिणी, चाकर तथा मित्र—
सभी कुछ एक साथ बनो।

निवेदिता स्वयं भारत लौटने से पहले इंग्लैंड जाने की योजना बना रही थी। निवेदिता के प्रस्थान की पूर्व-संध्या पर स्वामी जी ने उसे उद्यान में बुलाया और कहा, "संसार में आगे बढ़ो, और वहां यदि मैंने तुम्हें बनाया हो, तो नष्ट हो जाओ! किंतु यदि मां ने बनाया हो तो जीवित रहो!"

अगले दिन सुबह स्वामी जी उसे विदा करने आए। उसके संबंध में निवेदिता लिखती है, "यूरोप में स्वामी जी के बारे में अपनी अंतिम स्मृति का सहारा लेते हुए किसान की गाड़ी से एक बार फिर पीछे की ओर देखती हूं तो मुझे प्रातकालीन आकाश की पृष्ठभूमि में उनकी आकृति दिखाई देती है। वह हमारी लंदन-स्थित कुटिया के बाहर सड़क पर पूर्व की ओर हाथ उठाए नमन-मुद्रा में खड़े हैं, जो कि उनके आशीर्वचन का भी एक रूप है।" इस प्रकार स्वामी जी ने निवेदिता में आत्मविश्वास की भावना जाग्रत करके उसमें अपनी जीवन-यात्रा में अकेले आगे बढ़ने का साहस पैदा किया।

निवेदिता इस समय अपनी नियति के अंतिम लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी। स्वामी जी के भारत चले जाने के बाद वह इंग्लैंड में ही रह गई, यद्यपि उसके मन में यह शंका बनी रही कि उसका यह फैसला कहां तक उचित है। उसके मन में यह शंका भी थी कि वह कर्म करने की इच्छा और अपनी आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं के बीच सामजंस्य स्थापित कर सकेगी भी या नहीं। निवेदिता स्वामी विवेकानंद को पिता कहती थी। उसकी एक-मात्र इच्छा यह थी कि वह उनके आदर्शों के अनुकूल जीवनयापन कर सके। किंतु इंग्लैंड में उसका निवास और बाद में स्काटलैंड और नार्वे की यात्राएं भारत में उसके कार्य में अत्यंत सहायक सिद्ध हुई। इस समय डा. बोस ने लंदन में एक आपरेशन कराया और उन्हें तथा उनकी पत्नी को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सिस्टर निवेदिता और श्रीमती

बुल दोनों ने उनकी मित्रवत सहायता की। निवेदिता भारतीय जीवन-पद्धति की प्रबल रक्षक तथा भारतीय हितों की समर्थक के रूप में सामने आई। सन 1901 के जनवरी और फरवरी महीनों में उसने लंदन के श्रोताओं के समक्ष सप्ताह में तीन दिन 'भारत में आध्यात्मिक जीवन', 'भारतीय नारी का आदर्श' और यहां तक कि 'इंग्लैंड भारत में कैसे असफल हुआ' जैसे विषयों पर व्याख्यान दिए। धीरे धीरे निवेदिता भारत की समस्याओं के राजनीतिक पक्ष पर भी विचार करने लगी थी। उसने स्काटलैंड में भी व्याख्यान दिए। उसे भारतीय जीवन के बारे में ईसाई-धर्म-प्रचारकों द्वारा किए गए झूठे प्रचार का भी खंडन करना पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप वे उससे बहुत नाराज थे। उसने यह फैसला किया कि वह उनके बारे में एक किताब लिखेगी। लंदन में एक व्याख्यान और देने के बाद वह भारत लौटने को उत्सुक थी। भारत लौटने के लिए उसने कुमारी मैक्लियोड के माध्यम से मां की अनुमति ले ली थी, किंतु और काम आ पड़ने के कारण उसे वहां रुकना पड़ा था। कुमारी मैक्लियोड जापान के रास्ते से भारत गई थीं। निवेदिता ने एक शिक्षा-शास्त्री श्री हॉक्स के कहने पर भारतीय शिक्षा पर एक लेख लिखा था। 'रिव्यू ऑव रिव्यूज' के सुप्रसिद्ध संपादक श्री विलियम स्टेड ने उसे डा. जगदीश चंद्र बोस के जीवन का रेखाचित्र लिखने के लिए कहा। इस बीच 'काली द मदर' प्रकाशित हो चुकी थी। भारतीय सिविल सेवा के सदस्य तथा महान विद्वान श्री रमेशचंद्र दत्त ने, जिनकी पुस्तक 'इकानॉमिक हिस्ट्री ऑव इंडिया' एक अमर कृति है, निवेदिता को प्रोत्साहित किया कि अपने अनुभवों के आधार पर वह भारतीय जीवन के विषय में अधिक विस्तार से लिखे। इस प्रकार प्रेरित होकर उसने 'द वेव ऑव इंडियन लाइफ' जैसी पैनी कृति के पहले अध्याय लिखे। प्रो. गेडेस के निमंत्रण पर वह उनके साथ लगभग डेढ़ महीने तक डंडी में रही और उसने ग्लासगो प्रदर्शनी के भारतीय कक्ष में व्याख्यान दिए। इसके साथ साथ उसने ईसाई-धर्म-प्रचारकों द्वारा भारतवासियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के उत्तर में एक लेख लिखना स्वीकार किया। वह भारत लौटने के लिए उत्सुक तो बहुत थी, किंतु इन सब कामों के लिए उसे वहां रुकना पड़ा। अतः श्रीमती बुल से नार्वे स्थित उसके घर आने का निमंत्रण पाकर वह वहां गई और लगभग तीन महीने तक वहीं ठहरी। वहां श्री ओल बुल की कांस्य प्रतिभा का अनावरण किया जाना था। वहां रहने से उसे आराम मिला और उसका स्वास्थ्य भी अच्छा हो गया। अनेक मित्र भी उससे मिलने आए, किंतु उसने वहां रहकर कुछ ठोस काम भी किया। ईसाई-धर्म-प्रचारकों के आरोपों के उत्तर में उसने जो लेख लिखा, वह 'द वेस्ट मिनिस्टर गजट' में 'लैंब्स एमंग वुल्व्स' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। वह 4 सितंबर, 1901 को इंग्लैंड वापस लौटी।

इस समय सिस्टर निवेदिता की चिंतन शक्ति को एक नवीन तथा अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम मिला। अनेक अनुभवों से उसे इस बात का विश्वास हो गया कि भारत की राजनीतिक परतंत्रता पूरे विश्व को इस देश का संदेश पहुंचाने के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकावट

थी। उसने अंग्रेजी शासकों और अंग्रेजों का भारत में अत्याचारपूर्ण व्यवहार देखा था। स्वामी विवेकानंद को अमरीका में जितने विरोध और आलोचना का सामना करना पड़ा, वह निवेदिता के लिए एक कष्टदायक अनुभव था। उसने यह देखा था कि पेरिस में श्री जगदीशचंद्र बोस का किस तरह सम्मान किया गया था, किंतु इंग्लैंड में उन्हें अपमानित और उपेक्षित ही करने का प्रयास किया गया था। इन अनुभवों ने निवेदिता में यह भावना जाग्रत की कि सबसे पहले भारत को स्वतंत्र बनाना कितना आवश्यक है। उसने देखा कि इंग्लैंड में भारत के प्रति सहानुभूति रखने वाले बहुत कम लोग थे। उसने भारतीय राजनीति तथा अर्थनीति का ज्ञान श्री आर.सी. दत्त से प्राप्त किया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यवाहियों में भाग लेना शुरू किया। उसे पता चला कि एक भारतीय विश्वविद्यालय के लिए जमशेद जी टाटा द्वारा बनाई गई योजना रद्द कर दी गई है और श्रीमती ऐनी बेसेंट को बनारस में हिंदू कालेज चलाने की अनुमति नहीं दी गई है। उसने भारतीय स्थिति के विषय में प्रिंस क्रोपोट्किन के साथ विचार-विमर्श किया और उसे यह विश्वास था कि केवल भारत की ग्राम-व्यवस्था से ही स्थायी सामुदायिक जीवन का विकास किया जा सकता है। उसने ऐसे भारत की कल्पना की, जिसका विकास इसी व्यवस्था के अनुसार होगा, जिसके परिणामस्वरूप न इस देश में कोई युद्ध होगा और न ही कोई खून-खराबा। हम शांतिपूर्वक वाइसराय से मिलेंगे और उन्हें मुस्कराते हुए सूचित करेंगे कि अब इस देश को उसकी सेवाओं की कोई आवश्यकता नहीं रही। इस कार्य को पूरा करने के लिए महान साधनों को विस्तारपूर्वक धीरे धीरे तब अपनाया जा सकेगा, जब हम श्री गेडेस के कथनानुसार, "शांतिप्रिय जीवन के सिद्धांतों का पालन करने लगेंगे।" यह महात्मा गांधी के असहयोग कार्यक्रम तथा रचनात्मक कार्यों का पूर्व संकेत था, जिनके परिणामस्वरूप कुछ दशाब्दियों के भीतर ही देश को परतंत्रता से मुक्ति मिली। भगिनी निवेदिता भारत में इंग्लैंड के कृत्यों से कितनी अधिक क्षुब्ध थी, यह उसके इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है, "भारत जिस समय चिंतन में मग्न था, उस समय कुछ डाकुओं ने उस पर हमला करके उसकी धरती को पददलित कर दिया। ध्यान भंग हो गया। क्या ये डाकू भारत को कुछ सिखा सकते हैं? नहीं, उसे इन डाकुओं को यहां से निकाल बाहर करके अपनी पूर्व-स्थिति कायम रखनी है। मेरी कल्पना के अनुसार कुछ इसी प्रकार का कार्यक्रम भारत के लिए सच्चा कार्यक्रम होगा।" निवेदिता चाहती थी कि भारत के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्ति इंग्लैंड जाकर वहां के जनमत को जाग्रत करें। "हम चाहते हैं कि हमारी माटी की धूल भी हमारी संदेशवाहक बने...हमें हर जगह हवा के रुख के साथ ही बहना है, चाहे यह हमें कहीं भी ले जाए, ताकि हम उन सब लोगों तक, जो हमारे समीप आएं, अपना संदेश पहुंचा सकें—अनुकूल अवसर का लाभ उठाओ।" उसने स्वामी जी के राष्ट्रीय-चरित्र निर्माण के सिद्धांत के सर्वोपरि महत्व को नए सिरे से पहचाना। "निश्चित रूप से स्वामी जी के सिवा इसे किसी ने नहीं देखा, और मैं यह जानती

हूं कि उनकी दृष्टि से मेरी दृष्टि का कोई ह्रास नहीं होता, अपितु वह उसके लिए अधिक आवश्यक हो जाती है।" उसे यह संदेह था कि उसके मस्तिष्क में विकसित होने वाली नई विचारधारा और कार्य-पद्धति को स्वामी जी स्वीकृति प्रदान करेंगे भी या नहीं, क्योंकि स्वामी जी ने उसके सामने विचारधारा और कार्य-पद्धति का जो स्वरूप प्रस्तुत किया था, वह इससे भिन्न प्रतीत होता था, और जिसे वह किसी भी स्थिति में छोड़ नहीं सकती थी। वह अब भारत लौटने को उत्सुक थी। अतः उसने अपने बचे हुए काम को पूरा किया। उसके बाद उसने लंदन में बेथनी बहनों के विश्राम-गृह में एक सप्ताह बिताया। वहां भी शारदामणि के घर जैसा वातावरण पाकर वह प्रभावित हुई। वह कुछ दिन प्रो. गेडेस के साथ रही। इसके बाद उसने डा. जगदीशचंद्र बोस की पुस्तक 'द लिविंग एंड नॉन लिविंग' का संपादन किया और फिर जहाज द्वारा भारत के लिए रवाना हुई। इस यात्रा में उसके साथ श्रीमती ओल बुल और श्री आर.सी. दत्त भी थे। 3 फरवरी 1902 को मद्रास पहुंचने पर उनका सार्वजनिक स्वागत किया गया। सिस्टर निवेदिता ने स्वागत-भाषण का उत्तर देते हुए जो बातें कहीं, उनसे लोग अत्यंत प्रभावित हुए। उसका भाषण ऐसा था, मानो वह भारत की ही रहने वाली हो। उसने राष्ट्रीय परंपराओं का जोरदार समर्थन किया। इसके अतिरिक्त उसने इस देश की महानता का गुणगान किया, जिसे उसने अब अपना लिया था। उसका भाषण देश के लगभग सभी समाचारपत्रों में प्रकाशित किया गया। स्वामी विवेकानंद उस समय बनारस में थे। उन्होंने उसके भाषण की प्रशंसा की। भारत के प्रमुख व्यक्तियों ने भी निवेदिता से संपर्क स्थापित किया। इससे सरकार आशंकित हो गई और उसने निवेदिता की गतिविधियों पर निगरानी रखने के साथ साथ उसके पत्रों को सेंसर करना शुरू कर दिया। इसी समय गांधी जी एक सम्मेलन में भाग लेने कलकत्ता आए हुए थे, वह निवेदिता से मिले।

निवेदिता अभी भी नारी-शिक्षा के लिए स्कूल खोलने के लिए कृतसंकल्प थी और उसने अगली सरस्वती-पूजा के दिन पूजा-उत्सव सफलतापूर्वक मनाने के बाद स्वामी जी की अनुमति से स्कूल खोल दिया। उसकी वृद्धा परिचारिका कुमारी बेट ने भी इस काम में उसकी काफी सहायता की। कुमारी बेट उसके साथ भारत आई हुई थी। कुमारी क्रिस्टीन ग्रीनस्टिडेल, अप्रैल में निवेदिता के पास आ गई थीं और वही आगे चलकर इस स्कूल का कार्य-भार संभालने वाली थीं। उनका जन्म जर्मनी में हुआ था और उनके माता-पिता बाद में अमरीका में बस गए थे। जैसा कि ऊपर बताया गया है, वह पहली बार स्वामी जी से 1894 में डेट्रायट में मिली थीं। दो वर्ष के बाद वह एक अन्य महिला श्रीमती फंक के साथ एक कठिन यात्रा पूरी करके स्वामी जी से मिलने आई थीं। स्वामी जी उस समय थाउजेंट आइलैंड पार्क में ठहरे हुए थे। वह स्वामी जी से डेट्रायट में दुबारा फिर मिलीं। स्वामी जी उन दिनों दूसरी बार अमरीका की यात्रा पर आए हुए थे और एक सप्ताह के

लिए डेट्रायट में ठहरे हुए थे। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, उन्होंने इस काम के लिए चंदा इकट्ठा करने में भी निवेदिता की सहायता की और डेट्रायट-समिति की मंत्री बन गईं। स्वामी जी उनकी सेवा-भावना और त्याग से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उनके कलकत्ता पहुंचने पर उनका स्वागत किया। उनके मधुर और शांत स्वभाव से निवेदिता भी बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने स्कूल के काम में निवेदिता की काफी सहायता की। निवेदिता ने 23 मार्च को क्लासिक थियेटर में 'द हिंदू माइंड इन मार्डन साइंस' विषय पर व्याख्यान दिया। 1902 की गर्मियों में निवेदिता और क्रिस्टीन मायावती चली गईं। उनके साथ जापान के विद्वान और कलाकार तथा जापान की पुरातत्त्व सुधार-समिति के अध्यक्ष और भारतीय कला तथा संस्कृति के महान प्रेमी श्री काउंट ओकाकुरा भी थे। वह जापान के बौद्ध-मठ के प्रधान भिक्षु श्री ओडा के साथ जापान में होनेवाली धर्म-सभा में भाग लेने के लिए स्वामी विवेकानंद को निमंत्रण देने आए थे। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण स्वामी जी उनका निमंत्रण स्वीकार करने में असमर्थ थे, किंतु वह उनसे बड़े प्यार से मिले। ओकाकुरा, स्वामी जी की बोधगया और बनारस की अंतिम तीर्थ-यात्रा पर उनके साथ गए। वह काफी समय तक इस देश में रहे और उन्होंने 'आइडियल्स ऑव द ईस्ट' नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी। निवेदिता ने इस पुस्तक का संपादन किया और इसकी भूमिका लिखी। विश्वसनीय सूत्रों के अनुसार ओकाकुरा ने राजनीति में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। इसके साथ साथ श्री रवींद्रनाथ टैगोर के भतीजे सुरेन्द्रनाथ टैगोर की सहायता से और कुछ युवकों के सहयोग से उत्तर-भारत में गुप्त-समितियों का गठन करने में भी उनका हाथ था। ओकाकुरा के सान्निध्य से निवेदिता पर एक प्रभाव यह भी पड़ा था कि उसे केवल प्रचारक बनने से ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, उसे अपने विचारों को भारत के राष्ट्रीय जीवन में कार्यरूप में परिणत करने का भी प्रयास करना चाहिए। हिमालय के शांतिपूर्ण तथा निस्तब्ध वातावरण में एक महीना बिताने के बाद निवेदिता और उसके साथी कलकत्ता लौट आए।

अब अपने स्वामी से बिछुड़ने की घड़ी आ गई थी। यूरोप से वापस लौटने पर निवेदिता बेलूर मठ में स्वामी विवेकानंद से मिली थी, किंतु उन दिनों वह अस्वस्थ थे। स्वामी जी मठ में 10 मार्च को आयोजित रामकृष्ण के जन्मोत्सव के अवसर पर कमरे में ही रहे। तथापि निवेदिता ने अपने कुछ अंग्रेज मित्रों के साथ कुछ देर के लिए उनसे भेंट की। श्रीमती बुल और कुमारी मैक्लियोड उस वर्ष अगले दिन आखिरी बार स्वामी जी से उस समय मिलीं, जबकि मठ के मैदान में खेल प्रतियोगिताएं हो रही थीं और स्वामी जी खिड़की से ये प्रतियोगिताएं देख रहे थे। निवेदिता के 27 जून को मायावती से लौटने पर स्वामी जी अगले दिन उससे मिले। निवेदिता 29 जून को बेलूर मठ चली गई। उस दिन स्वामी जी ने उपवास पर होते हुए भी निवेदिता को भोजन परोसा और उसके भोजन कर लेने के बाद उसके हाथ धुलाए। ईसा द्वारा शहीद होने से पहले अपने शिष्यों के पैर धोने की कहानी

को ध्यान में रखकर सोचें तो यह घटना काफी महत्वपूर्ण थी। निवेदिता उस समय स्वामी जी के साथ तीन घंटे रही। बाद में श्रीमती नील हेमंड को एक पत्र में उसने लिखा कि उसका विचार है कि स्वामी जी यह बात जान गए थे कि वह उससे फिर कभी नहीं मिलेंगे। 4 जुलाई को स्वामी जी स्वस्थ थे और उन्होंने निवेदिता को इस आशय का एक संदेश भी भेजा। किंतु अगले ही दिन सवेरे सवेरे एक व्यक्ति यह सूचना लाया कि स्वामी जी का स्वर्गवास हो गया है। निवेदिता दाह-संस्कार होने तक स्वामी जी के पार्थिव-शरीर को पंखा झलती रही। जलती हुई चिता के ऊपर रखा हुआ कपड़े का एक छोटा-सा टुकड़ा उड़कर निवेदिता के पैरों पर आ गिरा। उसने श्रद्धापूर्वक उस टुकड़े को उठा लिया। वह इसे कुमारी जोसेफीन मैक्लियोड को देना चाहती थी। उसे अपने स्वामी का अंतिम आशीर्वाद मिल चुका था।

5

लक्ष्यपूर्ति की ओर

अब निवेदिता का एकमात्र लक्ष्य अपने गुरु के उस विश्वास को कार्यरूप में परिणत करना था, जो उन्होंने उसके प्रति प्रकट किया था। किंतु उसके इस कार्य ने एक नया आयाम ग्रहण कर लिया था। निवेदिता का यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया था कि भारत की प्रगति के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता अनिवार्य है। किंतु रामकृष्ण मठ का कोई भी सदस्य राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं ले सकता था। संभवतया इसीलिए स्वामी जी ने निवेदिता को यह बताया था कि उनका लक्ष्य न तो 'रामकृष्ण' का मार्ग था और न ही वेदांत का, अपितु उनका लक्ष्य तो अपनी जनता में नए सिरे से पुरुषार्थ की भावना पैदा करना था। निवेदिता ने उनकी सहायता करने का प्रस्ताव रखा था जिसे उन्होंने स्वीकार भी कर लिया था। किंतु इसके बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता कि स्वामी जी उसे सक्रिय राजनीति में भाग लेने की स्वीकृति दे ही देते। रामकृष्ण मिशन के प्रधान के रूप में स्वामी विवेकानंद के उत्तराधिकारी स्वामी ब्रह्मानंद ने निवेदिता को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने उसका निर्णय जानना चाहा। निवेदिता ने यह उत्तर दिया कि अपने कार्य में स्वतंत्र रहने के लिए वह मठ से अपना नाता तोड़ रही है। उसने सामचारपत्रों में भी यह घोषणा की कि भविष्य में वह जो भी कार्य करेगी, उसके लिए मठ की स्वीकृति या मठ के प्राधिकार का प्रश्न ही नहीं उठता। निवेदिता ने कुमारी मैक्लियोड को भी एक पत्र में लिखा कि वह स्वयं को महिलाओं के कल्याण के कार्य तक ही सीमित नहीं रख सकती जिनकी जीवन-धारा में कोई उथल-पुथल ही नहीं है। उसने अनुभव किया कि उसका कार्य उन समस्याओं तथा दायित्वों के प्रति राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करना है, जो देश के सामने हैं।

अब निवेदिता देश को जानने-समझने और स्वामी जी के संदेश को देशवासियों तक पहुंचाने के काम में जुट गई। स्वामी जी की मृत्यु के कुछ दिन बाद ही वह उनकी स्मृति में आयोजित एक सभा को संबोधित करने के लिए जेसोर गई। विद्यासागर के क्लासिक थियेटर में स्मृति दिवस पर आयोजित सभा में उसने भी भाषण दिया। श्री आर.सी दत्त ने इस सभा की अध्यक्षता की। इसके बाद वह बीमार हो गई और बेलूर-मठ के साधुओं

ने उसकी देखभाल की। इन दिनों उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी, फिर भी उसने अपनी अनेक पड़ोसी महिलाओं की आर्थिक सहायता की। वह अब अपनी पुस्तक 'द वेव ऑव इंडियन लाइफ' को समाप्त करने के काम में जुट गई। इस पुस्तक की बहुत अच्छी बिक्री हुई। इस बीच उसे बंबई से अनेक निमंत्रण मिले और उसने स्वामी सदानंद के साथ 22 सितंबर को बंबई के लिए प्रस्थान किया। बंबई में उसका अत्यंत व्यस्त कार्यक्रम रहा और उसने वहां अनेक व्याख्यान दिए। उसने 'स्वामी विवेकानंद', 'आधुनिक विज्ञान में हिंदू मानस', 'भारतीय नारीत्व', 'आधुनिक विचारधारा के संदर्भ में हिंदुत्व', 'भक्ति और शिक्षा', 'एशियाई एकता', तथा 'मां की पूजा' आदि विषयों पर व्याख्यान दिए। हिंदू विचारधारा में निवेदिता की गहन आस्था उन शब्दों में व्यक्त हुई है, जो उसने 'आधुनिक विज्ञान में हिंदू-मानस' नामक विषय पर व्याख्यान देते हुए कहे थे। उसने कहा था कि यूरोपीय विज्ञान ने चाहे जितनी भी प्रगति क्यों न कर ली हो फिर भी वह हिंदू-मानस के उस अंतर्ज्ञानतंत्र के समकक्ष नहीं ठहर सकता, जिसके माध्यम से वास्तविक सत्य का बोध होता है। उसके सभी व्याख्यानों की अत्यधिक सराहना की गई। कुमारी मैक्लियोड उसे पहले ही यह बता चुकी थीं कि स्वामी जी ने कहा था कि एक दिन निवेदिता का नाम पूरे भारत में गूंज उठेगा। अब निवेदिता ने कुमारी मैक्लियोड को एक पत्र में यह लिखा कि उसे आश्चर्य हो रहा है कि कहीं स्वामी जी के शब्द सच तो नहीं हो रहे हैं।

निवेदिता ने नागपुर, वर्धा और बड़ौदा में जो व्याख्यान दिए, वह भी उतने ही सफल रहे। बड़ौदा में वह अरविंद घोष से मिली। यह उनकी प्रथम भेंट थी, जिसके परिणामस्वरूप वह राजनीतिक उद्देश्य में उनकी सहयोगी बन गई। इसके बाद उसने अहमदाबाद में व्याख्यान दिए और फिर वह कान्हेरी गुफाएं तथा एलोरा देखने गई। एलोरा के विषय में उसने लिखा, "अनंतकाल तक, जब तक कि धरती अपने इस रूप में विद्यमान है, एलोरा की गणना उन स्थलों में की जाएगी, जहां ईश्वरीय रहस्य मनुष्य की आत्मा को अद्‌भुत रूप से अभिभूत करता रहेगा, चाहे उनका धार्मिक-विश्वास और मान्यता कुछ भी क्यों न हो।" थकावट के कारण उसने अपने आगामी दौरे रद्द कर दिए और कलकत्ता लौट गई। इसके बाद उसने चंद्रनगर में एक और कलकत्ता में दो व्याख्यान दिए।

किंतु 8 दिसंबर को निवेदिता स्वामी सदानंद के साथ मद्रास के लिए रवाना हो गई। उसके साथ ब्रह्मचारी अमूल्य भी थे, जो आगे चलकर स्वामी शंकरानंद कहलाये और रामकृष्ण मिशन के प्रधान बन गए। रास्ते में वे 'क्रिसमस' मनाने के लिए उड़ीसा के खंडगिरी में रुके। निवेदिता द्वारा क्रिसमस का मनाया जाना उस आध्यात्मिक संश्लिष्टता का प्रतीक था, जिसे वह अपना चुकी थी। दोनों संन्यासी गड़रियों के वेश में थे और अपने हाथों में मुड़ी हुई छड़ियां लिए हुए थे। वे सेंट ल्यूक की वाणी में से उस प्रसंग को पढ़ रहे थे, जिसमें बुद्धिमान व्यक्तियों का उल्लेख है तथा जहां फरिश्ते रात को खेतों में रहने वाले गड़रियों

को दिखाई देते हैं। उन्होंने ईसा मसीह के महान जीवन के संदर्भ में मृत्यु और पुनरुत्थान का भी अध्ययन किया। खंडगिरी में, जहां दो हजार वर्ष पहले भगवान बुद्ध ने अपना संदेश दिया था, ईसा मसीह के जीवन का संदेश सुनकर निवेदिता के जीवन में एक नवीन ज्ञान की अभिवृद्धि हुई।

19 दिसंबर को वे मद्रास पहुंचे। निवेदिता को इस शहर में आकर विशेष प्रसन्नता हुई, क्योंकि स्वामी जी को यहां ऐसे मित्र मिले थे, जिन्होंने अमरीका जाने में उनकी सहायता की थी, और जहां वापस लौटने पर उनका भव्य स्वागत किया गया था। यहां इससे पूर्व उस वर्ष निवेदिता का भी उसके पश्चिम की यात्रा से लौटने पर सार्वजनिक रूप से भव्य स्वागत किया गया था। स्थानीय शिष्यों के अनुरोध पर स्वामी जी ने स्वामी रामकृष्णानंद को मद्रास भेजा था, जहां रामकृष्णानंद ने एक स्थानीय भक्त द्वारा 'कैसल कैरनन' में दिए गए एक घर में मठ बनाया था। निवेदिता इस मठ में रही और वह जगह जगह सार्वजनिक भाषण देती रही। निवेदिता ने 'युवक हिंदू संघ' के तत्वावधान में दिए गए भाषण में भारत की एकता पर अपने विचार प्रस्तुत किए और यह घोषणा की कि यह एकता किसी विदेशी ने हमें उपहार में नहीं दी है। उसने बताया कि "यदि भारत में ही अपने आप एकता की भावना नहीं होगी तो उसे किसी प्रकार की एकता नहीं दी जा सकती। भारत में यह एकता की भावना स्वजनित है। इसकी अपनी नियति है, इसके अपने कार्यकलाप हैं और अपनी असीम शक्तियां हैं एवं यह किसी से उपहार में नहीं मिली है।"

महिलाओं की एक खचाखच भरी सभा को, जिसमें निवेदिता उपस्थित न हो सकी थी, संदेश भेजते हुए उसने महिलाओं के उस गौरवपूर्ण विशेषाधिकार और उत्तराधिकारी की ओर संकेत किया, जिसके तहत उन्हें समाज को समतल धुरी पर बनाये रखना है तथा एक सशक्त और निर्भीक पीढ़ी का निर्माण करना है। 'भारत की एकता', 'राष्ट्रीयता', 'स्वामी जी का आदर्शवाद', तथा 'हिंदू-धर्म' जैसे विषयों पर चर्चा करने के लिए विद्यार्थियों से बातचीत करने का परिणाम यह हुआ कि अनेक विद्यार्थियों ने उस प्रदेश के अनेक स्थानों पर विवेकानंद समितियां स्थापित कीं। इन समितियों ने वेदांत के संदेश का उपदेश दिया और सामाजिक तथा शैक्षणिक कार्य किया। निवेदिता ने उनके काम में उनका मार्गदर्शन करने के लिए स्वयं एक पुस्तक लिखी।

लोगों से वार्तालाप करना भी निवेदिता के कार्य का एक मुख्य भाग था। वह कांजीवरम गई, जहां उसके पहुंचते ही रेलवे स्टेशन पर इस प्रकार की एक सभा का आयोजन किया गया, और इसके बाद उसने कई सार्वजनिक सभाओं में व्याख्यान दिये। वह फिर मद्रास लौट आई और वहां 1903 में स्वामी विवेकानंद का जन्मदिन बड़ी धूमधाम से मनाया गया। उसे अनेक स्थानों से और भी कई निमंत्रण मिले, किंतु वह उन्हें स्वीकार करने में असमर्थ थी। वह अपने सहयोगियों के साथ अगले ही दिन कलकत्ता के लिए रवाना हो गई। दक्षिण

भारत में जिस प्रकार से रामकृष्ण तथा विवेकानंद के संदेश का स्वागत किया गया था, उसे देखकर वह अत्यधिक प्रसन्न हुई, किंतु मद्रास में रामकृष्ण मिशन का कार्य फिलहाल स्थगित करना पड़ा था क्योंकि जिस मकान में यह मिशन बनाया गया था उसका स्वामित्व किसी और के हाथों में चला गया था।

अब निवेदिता के पास फिर से उस स्कूल की देखभाल करने के लिए समय ही समय था, जिसके विचारों में वह हमेशा ही खोई रहती थी। जैसा कि पहले बताया गया है कि उसकी पुरानी सखी कुमारी बेट उसकी अनुपस्थिति में स्कूल की देखभाल किया करती थी। क्रिस्टीन ग्रीनस्टिडेल मार्च 1903 में वहां पहुंचकर निवेदिता के साथ रहने लगी थी। इस स्कूल में अब पैंतालीस बच्चे थे और उन्हें नवीनतम पद्धतियों से शिक्षा प्रदान की जाती थी। नयी शिक्षा पद्धति का मुख्य लक्ष्य व्यावहारिक अभ्यास द्वारा किताबी ज्ञान के पूरक के रूप में काम करना था। निवेदिता ने अपनी प्रत्येक शिष्या के व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए उसके व्यक्तिगत इतिवृत्त का संकलन किया। इसके बाद स्कूल में नारी-शिक्षा के लिए एक कक्षा आरंभ की, जिसमें आस-पड़ोस की वे महिलाएं शिक्षा ग्रहण करने आती थीं, जिनसे निवेदिता और क्रिस्टीन की मित्रता हो गई थी। स्वामी शारदानंद और स्वामी बोधानंद गीता की शिक्षा देते थे, डा. जगदीश चंद्र बोस की बहन लावण्य प्रभा बोस पढ़ना-लिखना सिखाती थीं, मां शारदामणि की सहयोगी जोगिनमां धर्म-शिक्षा देती थीं और क्रिस्टीन सिलाई-कढ़ाई सिखाती थीं। इन सभी महिलाओं को घर का कामकाज भी करना पड़ता था, फिर भी वे स्कूल जाने में काफी रुचि लेने लगी थीं और उनके मानसिक क्षितिज का बड़ी तेजी से विकास होने लगा था। एक बार स्कूल के आंगन में चंडी-पुराण कथा का आयोजन किया गया था, जिसमें महिलाओं ने भारी संख्या में भाग लिया था। इस तरह निवेदिता और क्रिस्टीन ने बस्ती की रूढ़िवादी तथा अनपढ़ महिलाओं को, शिक्षा देने के ऐसे तरीके अपनाये, जो पूरी तरह उनकी आस्थाओं तथा विश्वासों के अनुरूप थे। उन्हें इसका जो प्रतिफल मिला था, वह न केवल उनके लिए ही सुखदायक था, बल्कि 'स्टेट्समैन' के तत्कालीन संपादक श्री एस.के. रैटक्लिफ जैसे आलोचकों के द्वारा भी उनकी सराहना की गई थी। इस योजना की सफलता का अधिक श्रेय क्रिस्टीन को था और इसे निवेदिता ने साभार स्वीकार किया था। निवेदिता स्वयं सिलाई व कढ़ाई सिखाती थी और वरिष्ठ छात्राओं की अध्यापक-प्रशिक्षण कक्षाएं लेती थी। स्कूल में हर दिन काम शुरू करने से पहले स्वामी रामकृष्ण के एक सुसज्जित चित्र के सामने 'वंदे मातरम' गाया जाता था और संस्कृत में प्रार्थना की जाती थी। मां शारदामणि समय समय पर स्कूल आया करती थीं और यह स्कूल के लिए अत्यंत प्रेरणादायक बात थी। इस तरह स्कूल का विस्तार होने लगा था और निवेदिता के समय में ही स्कूल के लिए एक और अतिरिक्त भवन की व्यवस्था करनी पड़ी थी। यह एक ऐसी साधारण, किंतु समर्पित शुरुआत थी, जो अब विशाल

'रामकृष्ण शारदा मिशन सिस्टर निवेदिता गर्ल्स स्कूल' है।

अपने अपनाये हुए देश के भविष्य का सही दिशा में निर्माण करने के विचार से निवेदिता ने एक विश्वविद्यालय बनाने की योजना बनाई, जहां भारत और विदेशों की स्त्रियां और पुरुष दोनों को राष्ट्रीय शैक्षणिक कार्य के लिए प्रशिक्षण दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त उसने एक बालगृह बनाने की भी योजना बनाई, जिसमें रहने वाले छात्रों को छह महीने तक पढ़ाया जाएगा और बाकी के छह महीनों में वे देश का भ्रमण करेंगे। किंतु ये योजनाएं पूरी नहीं की जा सकीं, फिर भी 1903 में विवेकानंद-गृह के लड़कों को स्वामी सदानंद पिंडारी ग्लेशियर दिखाने ले गए। रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने पुत्र रथींद्रनाथ को भी इन लड़कों के साथ भेजा। इस बीच निवेदिता का व्याख्यान देने और लेखन का कार्यक्रम बिना किसी व्यवधान के चलता रहा। वह कलकत्ता और अन्य शहरों में व्याख्यान देती रही। वह देश की सभी महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेख आदि लिखती रही।

अब निवेदिता का पटना और लखनऊ में व्याख्यान देने का कार्यक्रम था। उसने 9 जनवरी, 1904 को बेलूर मठ में स्वामी जी के जन्मोत्सव में भाग लिया। इसके दो दिन बाद उसने एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया। इसके अतिरिक्त उसने विवेकानंद स्मारक सदन में स्वामी विवेकानंद पर भी भाषण दिया। तदुपरांत वह स्वामी सदानंद और स्वामी शंकरानंद के साथ पटना चली गई। स्वामी सदानंद जापान हो आए थे। उन्होंने महिलाओं की एक सभा में उस देश में हुए अपने अनुभवों के बारे में एक चमत्कारी भाषण दिया। महिलाओं ने उनके भाषण की बहुत प्रशंसा की। निवेदिता ने तीन व्याख्यान दिए और अनेक परिचर्चाओं का आयोजन किया। हिंदू बाल-संघ सरस्वती-पूजा के दिन अपनी वर्षगांठ मना रहा था। इस अवसर पर निवेदिता को सभा को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया गया था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर यदुनाथ सरकार ने अत्यंत प्रशंसापूर्ण शब्दों में निवेदिता का परिचय कराया। उसने अपने भाषण में इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि बालकों को देश की सेवा करने के लिए सच्चे इंसान के रूप में अपना विकास करना चाहिए। उसके भाषण से लोग अत्यधिक उत्साहित हुए। उसने 'भारत में शिक्षा-समस्या' नामक विषय पर एक सार्वजनिक भाषण में शिक्षा के माध्यम से भारतीय नारी में सर्वोत्कृष्ट मानवीय-गुणों का विकास करने और विद्यार्थियों द्वारा स्वतंत्रता-प्राप्ति के राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करने की बात याद रखने की आवश्यकता पर बल दिया। उसने कहा, "लड़कों की शिक्षा का मूलाधार उनमें राष्ट्रीय-भावना पैदा करना और लड़कियों की शिक्षा का मूलाधार उनमें नागरिकता की भावना पैदा करना होगा।" निवेदिता का तीसरा व्याख्यान 'स्वामी विवेकानंद का जीवन-लक्ष्य' नामक विषय पर था। उसके इन व्याख्यानों का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसके बाद निवेदिता ऐसे स्थान देखने गई, जो भगवान बुद्ध से संबद्ध होने के कारण पवित्र माने जाते थे। भगवान बुद्ध के जीवन और उपदेशों

से वह बचपन में ही प्रभावित हो चुकी थी और स्वामी विवेकानंद ने उसे भगवान बुद्ध के बारे में जो कुछ बताया था, उससे उसके मन में उनके प्रति आदर की भावना और बढ़ गई थी। उसके धार्मिक-अनुष्ठान समारोह की समाप्ति पर बुद्ध की मूर्ति के चरणों में पुष्प अर्पित किए गए थे। इसके बाद निवेदिता प्राचीन पाटलिपुत्र-स्थल बांकीपुर से राजगीर चली गई और वह वहां के प्रसिद्ध पर्वत घूमती रही। वह अपने साथियों के साथ ग्यारह मील की दूरी पर स्थित तिल्य स्टेशन तक भी पैदल चल कर गई और वहां से वह बोधगया गई, जहां उसे असीम आनंद की अनुभूति हुई। उसने वहां के एक प्रसिद्ध मंदिर के स्वामित्व के अधिकार के प्रश्न पर हिंदुओं और बौद्धों के बीच चल रहे विवाद की भी मध्यस्थता की। निवेदिता ने एक सार्वजनिक भाषण में तथा व्यापक रूप से प्रसारित अपने एक वक्तव्य में इस बात पर जोर दिया कि बौद्ध-समुदाय हिंदुओं से अलग नहीं है, और न ही उनमें आपस में कोई झगड़ा है। उसके सामने बोधगया में इतिहास का एक स्कूल खोलने का प्रस्ताव भी रखा गया, किंतु यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हुआ। बोधगया से निवेदिता बनारस के समीप स्थित सारनाथ देखने गई। वहां से वह लखनऊ चली गई, जहां उसका व्याख्यान देने का अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम रहा। उस समय हिंदू-मुसलमान एकता का प्रश्न एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में लोगों के सामने था और निवेदिता भी इस समस्या को सुलझाने का सक्रिय रूप से प्रयास कर रही थी। कलकत्ता वापस लौटने के बाद भी उसे 'ब्रह्मचर्य बनाम विवाहित-जीवन', 'बोधगया' और 'गतिशील धर्म' जैसे विषयों पर व्याख्यान देने पड़े थे। उसने हिंदू-विवाह की सामाजिक संस्था तथा एक धार्मिक संस्कार--दोनों रूपों में प्रभावशाली—किंतु संक्षिप्त व्याख्या से लोगों को प्रभावित किया। 'गतिशील धर्म' पर अपने व्याख्यान में उसने भारत और धार्मिक आंदोलनों की गतिशीलता को स्पष्ट किया। निवेदिता का एक अन्य महत्वपूर्ण व्याख्यान 'एशिया में इस्लाम' नामक विषय पर था, जो उसने कलकत्ता मदरसा के तत्वावधान में दिया था। व्याख्यान सुनने वालों में अधिकांशतया मुसलमान थे। अपने भाषण में निवेदिता ने कहा, ''आज भारत के हर मुसलमान का कर्तव्य क्या है? उसका कर्तव्य अपना रिश्ता अरब से जोड़ना नहीं है। उसे इसकी कोई जरूरत भी नहीं है; क्योंकि अरब से उसका रिश्ता तो प्राण और खून का रिश्ता है, जो कि उसकी अपनी आस्था और पूर्वजों के अथक परिश्रम के कारण ही कायम हुआ था। प्रत्येक भारतीय मुसलमान का कर्तव्य है कि वह अपने आपको भारत और उसकी राष्ट्रीयता में समाहित कर ले। खून के रिश्ते के नाते भारत उसका अपना देश है या उसने उसे अपने देश के रूप में स्वीकार किया है और उसे यहां शरण मिली है। उसका कर्तव्य है कि वह भारत की राष्ट्रीयता में उस प्रचंड शक्ति का संचार करे, जो उसे परंपरागत विरासत के रूप में मिली है।''

यह उल्लेखनीय है कि 1904 में ही निवेदिता ने मुसलमानों को सही रास्ता बताते

हुए कहा था कि उन्हें अपने-आपको राष्ट्रीय जीवन से जोड़ लेना चाहिए। यह ऐसी समस्या थी, जिसने आगामी दशाब्दियों में राजनीतिक क्षेत्रों में खलबली मचा दी थी। मार्च में उसने बनारस में व्याख्यान देने का एक और कार्यक्रम भी पूरा किया था। वह और क्रिस्टीन दोनों श्रीमती सेवियर्स के निमंत्रण पर गर्मियों में मायावती चले गए। डा. जगदीशचंद्र बोस और उनकी पत्नी और बहन उनके साथ गए। (यह 17 मई 1904 की बात है जबकि डा. बोस ने मायावती में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्लांट रिस्पांस' लिखनी शुरू की थी।) उसने कलकत्ता में कई और व्याख्यान भी दिए। इनमें 'भारतीय कला' पर उसके दो व्याख्यान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारतीय कला के विषय में उसकी जो सूझबूझ थी और जिस प्रकार से उसने भारतीय कला की व्याख्या की थी, उसका परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर भारत के कलात्मक जीवन के पुनरुत्थान में वह जो ठोस योगदान देने वाली थी, उसके लिए अब एक रास्ता तैयार हो गया था। उसकी यात्राएं तथा व्याख्यान भारतवासियों में अपनी सत्ता के प्रति पुनः जागृति की भावना पैदा करने की दिशा में एक ठोस प्रयास था। उसी वर्ष अक्तूबर में बोधगया की उसकी यात्रा अपूर्व थी, क्योंकि इस यात्रा में अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्ति उसके साथ थे। इनमें डा. जगदीशचंद्र बोस, रवींद्रनाथ टैगोर, स्वामी शंकरानंद, यदुनाथ सरकार और पटना के एक विशिष्ट नागरिक मथुरानाथ सिन्हा थे। वे सभी भारतीय परंपरा की आत्मा को पुनर्जीवित करने के उसके प्रयास में उसके साथ थे। वह उन्हें हर रोज वारेन की 'बुद्धिज़्म इन ट्रांसलेशन' और एडविन आर्नोल्ड की 'लाइट ऑव एशिया' पढ़कर सुनाया करती थी। रवींद्रनाथ टैगोर का सस्वर पाठ और गीत उस दल के सभी व्यक्तियों को मोहित कर दिया करते थे। दिन में वे सब मंदिर के आसपास घूमा करते थे या समीप के गांव देखने चले जाते थे। शामें वे बोधिवृक्ष के नीचे समाधिस्थ चिंतन में व्यतीत कर देते थे। एक गरीब जापानी मछुआरे के भजनों से वातावरण और पवित्र हो उठता था। यह मछुआरा बड़े यत्न से पैसे बचाकर भारत की तीर्थयात्रा पर आया हुआ था। एक शाम निवेदिता ने बौद्धयुग का वर्णन इतने प्रभावशाली ढंग से किया कि उसके सभी साथी उस युग के रंग में रंग गए। एक दूसरी शाम को वे भगवान बुद्ध की भक्त सुजाता का उर्बेल-उरु-विला में बौद्ध-काल में निर्मित घर देखने गए और निवेदिता ने भाव-विभोर होकर सुजाता के जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला। उसने स्वामी विवेकानंद के इस कथन की ओर भी ध्यान दिलाया कि भारत का सामाजिक-तंत्र लाखों साधुओं के ऐसे समुदाय का पोषण करता है, जो प्रकटतया निष्क्रिय है, किंतु इसी समुदाय में समय समय पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस जैसे व्यक्ति भी पैदा होते हैं। इसके बाद उसने उस आध्यात्मिक धारा का उल्लेख किया, जो युगों से भारत के राष्ट्रीय जीवन में बहती चली आ रही है।

यही नहीं, बल्कि बोधगया से प्रस्थान करने की पूर्व-संध्या पर निवेदिता यह सोच सोचकर

उद्वेलित हो रही थी कि भारत अभी भी आत्म-सत्ता के प्रति जागृत नहीं है और न ही यह देश मानवीय-जीवन और सभ्यता में अपने को पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए तैयार है। वह इस बात से बहुत दुखी थी कि भारत में पुनर्जागृति लाने के उसके तथा उसके सहयोगियों के प्रयास सफल नहीं हुए थे। निस्संदेह यह उसके जीवन के एक ऐसे नए और साहसी मोड़ की भूमिका थी, जिसमें भारत द्वारा पुनः अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयासों में उसने भी शामिल होकर अपना योगदान दिया था।

6

स्वतंत्रता संग्राम में

सिस्टर निवेदिता ने अपने को रामकृष्ण संप्रदाय से मुक्त कर लिया था। इसका कारण यह था कि संप्रदाय के नियमों के अनुसार उसके सदस्य राजनीति में भाग नहीं ले सकते थे। बीसवीं शताब्दी में भारतवासियों में अपने अधिकारों के प्रति एक नई चेतना जाग्रत हुई। उन्होंने अपने अधिकारों के छीने जाने पर खुलकर आक्रोश प्रकट किया। स्वामी विवेकानंद ने स्वयं निवेदिता को बताया था कि अगले पचास वर्षों में यह होगा कि भारतीय पहले भारत माता की पूजा और बाद में अन्य देवी-देवताओं की पूजा करना शुरू कर देंगे। सिस्टर निवेदिता ने अपने जीवन को इसी रूप में ढाल लिया। उन दिनों कलकत्ता नवजात राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य केंद्र था। निवेदिता उन दिनों वहीं थी और उसने अपने आपको समय की विचारधारा से जोड़ लिया था। अतः उस क्षेत्र में सक्रिय हो जाना स्वाभाविक ही था। राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने 1902 में सत्तारूढ़ सरकार द्वारा आयोजित दरबार को संदेह की दृष्टि से देखा। कांग्रेस के नेताओं ने अहमदाबाद में आमंत्रित अपनी एक बैठक में दरबार के आयोजन की निंदा की और उसे धन की फिजूलखर्ची बताया, निवेदिता को सूचना मिली कि यह दरबार भारतीय राजकुमारों के लिए अपमानजनक था। उसने कहा कि दरबार के प्रति भारतवासियों की जो प्रतिक्रिया थी, उससे यह पता चलता है कि भारतीय अब राजनीति को काफी अच्छी तरह समझने लगे हैं। तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय का सरकारीकरण किये जाने से लोगों में तीव्र आक्रोश भर गया। निवेदिता ने इसकी कटु आलोचना की और साथ ही साथ 'शैक्षणिक समस्याओं' पर अपने अनेक व्याख्यानों में लोगों से कहा कि वे राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनाने का काम करें। इन उपदेशों का लोगों के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। राजनीतिक चेतना के विकास के साथ साथ राष्ट्रीय-कार्य के लिए युवकों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक समितियां बन गईं। सतीशचंद्र मुखर्जी द्वारा स्थापित 'डॉन सोसाइटी' और सतीशचंद्र बोस तथा बैरिस्टर पी. मित्र द्वारा स्थापित 'अनुशीलन समिति' ऐसी ही दो प्रमुख समितियां थीं, और अन्य समितियों में 'यंग मेन्स हिंदू यूनियन कमेटी', 'गीता सोसाइटी' और 'विवेकानंद सोसाइटी'

थीं। भगिनी निवेदिता इन सभी समितियों से संबद्ध थी। उसने गीता, स्वामी विवेकानंद के संदेश तथा सामान्य रूप से हिंदू धर्म पर व्याख्यान देकर इन समितियों के सदस्यों को प्रेरित किया। उसने 'राष्ट्र', 'राष्ट्रीयता' तथा 'राष्ट्रीय चेतना' पर विशेष रूप से बल दिया और इस प्रकार वह राष्ट्रवाद की प्रचारक बन गई। उसकी प्रेरणा से खेल, गायन और वाद-विवाद प्रतियोगिताएं युवकों के प्रशिक्षण का एक अंग बन गईं। वह उन युवकों की मार्गदर्शक थी और प्रायः उनके उत्कृष्ट कार्यों के लिए विवेकानंद पदक बांटा करती थी।

डॉन सोसाइटी ने राष्ट्रीय समिति और नेशनल कालेज की स्थापना की। भगिनी निवेदिता इन कार्यों के माध्यम से उस समय के सभी प्रमुख व्यक्तियों से संबद्ध थी, जिनमें ब्रजेन्द्रनाथ सील, रवींद्रनाथ टैगोर, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, विपिनचंद्र पाल और अब्दुल रसूल जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी थे। प्रोफेसर विनय सरकार ने, जिन्होंने आगे चलकर एक अर्थशास्त्री तथा रचनात्मक विचारक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की, डॉन सोसाइटी संबंधित निवेदिता के कार्य तथा प्रभाव का लिखित प्रमाण छोड़ा है। राजनीति की ओर अपेक्षाकृत अधिक उन्मुख अनुशीलन समिति के साथ सी.आर. दास, रासबिहारी घोष, सिस्टर निवेदिता तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति भी संबद्ध थे। इन समितियों का उद्देश्य युवक-युवतियों को शारीरिक, मानसिक और नैतिक प्रशिक्षण देना था। शारीरिक-विकास के लिए व्यायामशालाएं खोलना, महापुरुषों के जीवन और विभिन्न देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति पर परिचर्चा के लिए अध्ययन केंद्र खोलना; रामायण, महाभारत, गीता, चंडी और स्वामी विवेकानंद के साहित्य की शिक्षा देने के लिए कक्षाएं चलाना इन समितियों की कुछ प्रमुख गतिविधियां थीं। इसके अतिरिक्त इन समितियों के तत्वावधान में स्वामी शारदानंद, सत्याचरण शास्त्री और ब्रह्माबांधव उपाध्याय 'धार्मिक प्रथाओं' की शिक्षा भी देते थे। श्री अरविंद घोष उस समय बड़ौदा में थे। उन्होंने जब श्री जतींद्रनाथ बनर्जी को एक दूत के रूप में इन समितियों के पास इस संदेश के साथ भेजा, कि वे राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने कार्यों का क्रांतिकारी आधार पर पुनर्गठन करें तो इन समितियों की गतिविधियों ने एक नया मोड़ ले लिया। इसके परिणामस्वरूप शारीरिक प्रशिक्षण तथा सुनियोजित संचालन पर अधिक बल देने के लिए इन समितियों के कार्यक्रमों का पुनर्निधारण करना आवश्यक हो गया। श्री अरविंद ने इन संगठनों को मिलाकर पांच व्यक्तियों की एक केंद्रीय परिषद का रूप देने का प्रयास किया। वह चाहते थे कि इस परिषद के पांच सदस्यों में निवेदिता भी एक हो। किंतु उनकी अनुपस्थिति में बड़ौदा में यह योजना सफल नहीं हुई। फिर भी अनुशीलन समिति का विकास श्री अरविंद द्वारा बताए गए मार्ग पर ही हुआ। सिस्टर निवेदिता इस समिति के साथ सक्रिय रूप से संबद्ध थी। निवेदिता का यह विश्वास था कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए क्रांतिकारी पद्धति का उपयोग करना आवश्यक है। वह 'काली' की उपासक होने के कारण इस काम के लिए हिंसा को बढ़ावा

देने के खिलाफ नहीं थी। लेकिन इसके साथ साथ उसने देश में अन्य सभी राजनीतिक विचारधाराओं से भी संपर्क बनाए रखा। इसीलिए उसकी उग्रपंथी नेता बिपिनचंद्र पाल से भी मित्रता थी, और वह उनके पत्र 'न्यू इंडिया' में लिखती भी थी। इसके अलावा वह उदारवादी नेता गोपालकृष्ण गोखले तथा रमेशचंद्र दत्त की भी अभिन्न मित्र थी। रमेशचंद्र दत्त देश के लोगों की आर्थिक समस्याओं से गहरे रूप से जुड़े हुए थे। निवेदिता ने कहा, "मुझे इस देश में अपना हल इतनी ज्यादा गहराई तक चलाने दो ताकि यह यथासंभव समस्याओं की जड़ तक पहुंच सके। इसे एक कक्ष से नीरव संदेश भेजने वाली अदृश्य ध्वनि का रूप ग्रहण करने दो, अथवा ऐसे व्यक्तित्व का रूप ग्रहण करने दो जो बड़े बड़े नगरों में छा जाये—मुझे कोई चिंता नहीं है! किंतु मेरे शक्तिदाता ईश्वर का यह आदेश है कि मैं पश्चिम की सारहीन बातों पर उत्तेजित होकर अपनी शक्ति नष्ट न करूं। मैं समझती हूं कि इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा होगा कि मैं आत्महत्या कर लूं। जहां तक मेरा संबंध है भारत ही मेरा प्रारंभिक उद्देश्य और अंतिम लक्ष्य है। यदि देश की इच्छा हो तो वह पश्चिम की ओर भी निहार सकता है।"

राष्ट्रीय आंदोलन के साथ सिस्टर निवेदिता के तादात्म्य स्थापित करने के क्रम की प्रक्रिया अपने आप में काफी रुचिकर हो सकती है। बात 21 फरवरी, 1905 की है। वाइसराय लार्ड कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दिए गए अपने भाषण में भारतवासियों के बारे में जो बातें कहीं उनसे भारतीयों की भावना को ठेस पहुंची। उनका कहना था कि पूर्वी देशों के लोगों में पश्चिमी देशों के लोगों की तुलना में सच्चाई की भावना कम है। यद्यपि भारतीय जन-समुदाय के चरित्र पर लगाए गए अनुचित लांछन का किसी ने भी तत्काल विरोध नहीं किया, किंतु जनमत का नेतृत्व करने वाले जितने व्यक्ति वहां दीक्षांत समारोह में उपस्थित थे, उन्होंने इस विषय पर आपस में विचार-विमर्श किया। निवेदिता ने भी उनकी चर्चा में भाग लिया। अगले दिन उसने लार्ड कर्जन की 'प्राब्लम्स ऑव फार ईस्ट' नामक पुस्तक के एक उद्धरण को समाचारपत्रों में प्रकाशित कराया। इसमें लार्ड कर्जन ने खुद उस घटना का वर्णन किया है, जब उन्होंने कोरिया की यात्रा के दौरान कोरिया के विदेश कार्यालय के अध्यक्ष को एक ऐसी बात बताई, जिसमें वस्तुतया कोई सच्चाई नहीं थी। उन्होंने बताया था कि इंग्लैंड की महारानी से उनका विवाह होने जा रहा है। जिस व्यक्ति ने भारतवासियों पर यह आरोप लगाने का दुस्साहस किया था कि झूठ बोलना भारतवासियों की रग रग में समाया हुआ है, उसी व्यक्ति द्वारा बोले गए झूठ का पर्दाफाश होने से लोग भड़क उठे। किंतु लोगों को यह पता नहीं चला कि इस तथ्य का उद्घाटन किसने किया था। डा. जगदीशचंद्र बोस, उन चंद लोगों में से एक थे, जिन्हें इस बात की जानकारी थी। उन्होंने निवेदिता को एक पत्र लिखकर उसे 'मेघाच्छादित विद्युत' कहकर संबोधित किया। निवेदिता ने इस मामले में 'स्टेट्समैन' के संपादक को एक खुला

पत्र लिख कर इस मामले को और आगे बढ़ाया। इस पत्र में उसने प्रोफेसर मॅक्सम्यूलर की पुस्तक 'व्हाट इंडिया हैज टू टीच अस' का उल्लेख किया, जिसका दूसरा अध्याय 'भारतवासियों के सत्यवादी चरित्र' से संबंधित है। इसके साथ साथ उसने उन छात्रों को भी फटकारा, जिनके सामने लार्ड कर्जन ने वे अपमानजनक शब्द कहे थे, और जिन्होंने किसी भी प्रकार से उनका विरोध नहीं किया था। इसके परिणामस्वरूप 'प्राब्लम्स ऑव फार ईस्ट' नामक पुस्तक के उस 'रहस्योद्घाटनकारी' अंश को अगले संस्करण में से निकाल दिया गया। लार्ड कर्जन के इस झूठे आरोप के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए कलकत्ता के टाउनहाल में मार्च 1905 में एक सार्वजनिक सभा की गई। उसके कुछ दिनों बाद ही निवेदिता को गर्दनतोड़ बुखार हो गया और उसकी दशा गंभीर हो गई। स्वस्थ होने के बाद वह बोस दंपति के साथ जलवायु-परिवर्तन के लिए दार्जलिंग चली गई और 3 जुलाई को वापस लौटी।

उसके कुछ दिनों बाद ही एक ऐसी घटना हुई, जिसने भारत के इतिहास का रुख ही बदल दिया और अब सिस्टर निवेदिता स्वतंत्रता संघर्ष के कार्य में पूर्णतया लिप्त हो गई। ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल-प्रदेश का विभाजन करने के निर्णय की घोषणा 20 जुलाई को की गई। इस पर लोगों की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए 7 अगस्त को टाउन हाल में की गई विशाल सभा में सिस्टर निवेदिता ने भी भाग लिया। इसके बाद सभा में विभाजन-विरोधी आंदोलन के एक महत्वपूर्ण नेता सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने विभाजन की कार्रवाई के विरोध में बंगाल की एकता के प्रतीक के रूप में एक 'फेडरेशन हाल' के निर्माण का प्रस्ताव रखा। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'ए नेशन इन द मेकिंग' में यह लिखा है कि सिस्टर निवेदिता "अर्थात उस परोपकारी महिला ने, जिसने भारत के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था और जिसकी मृत्यु भारत की सेवा करते करते हुई थी," इस प्रस्ताव का दृढ़ता से समर्थन किया था। निवेदिता ने स्वदेशी आंदोलन तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने का भी स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया।

उसने कहा, "पूरे स्वदेशी आंदोलन में साहस और आत्मनिर्भरता की भावना परिलक्षित होती है। सहायता के लिए कोई भीख नहीं मांगता, रियायतों के लिए चापलूसी नहीं करता, कभी ऐसा समय भी आएगा, जब भारत में विदेशों से कोई वस्तु खरीदने वाले किसी व्यक्ति को आज की भांति गौ-हत्या करने वाला व्यक्ति माना जाएगा, क्योंकि निश्चित रूप से नैतिक स्तर पर दोनों अपराध समान हैं। यह स्पष्टतया उस स्वदेशी की प्रतिज्ञा का पालन करने के समान है, जिसके अनुसार भारत के लोग अवसर आने पर सच्चे रूप में अपना साहस दिखा सकते हैं।"

सरकार ने जवाब में अनेक परिपत्र जारी करके इस आंदोलन का प्रतिकार किया। एक परिपत्र में सरकार ने 'वंदे मातरम' गीत के गायन पर और 'वंदे मातरम' का नारा

लगाने पर प्रतिबंध लगा दिया। बंगाल का विभाजन 16 अक्तूबर को हुआ। कांग्रेस ने इसे राष्ट्रीय शोक-दिवस के रूप में मनाया। उसी दिन सुप्रसिद्ध नेता आनंदमोहन बोस ने 'फेडरेशन हाल' की नींव रखी। वह बहुत बीमार थे और उनका भाषण सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने पढ़ा। सिस्टर निवेदिता स्वयं इन सभी कार्यों से संबद्ध हो गई और उसने अध्यक्ष श्री गोखले के निमंत्रण पर बनारस में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया। उग्रवादियों ने कांग्रेस को अपनी ओर करके बहिष्कार के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पारित करा लिया। इस उपलब्धि की सिस्टर निवेदिता ने भूरि भूरि प्रशंसा की। श्री गोखले का कांग्रेस में अच्छा-खासा प्रभाव था। निवेदिता ने अपने धन्यवाद भाषण में श्री गोखले के इस प्रयास की सराहना की कि वह इंग्लैंड को न्याय के मार्ग पर ला सके और इस प्रकार उसकी आध्यात्मिक सेवा कर सके। उसने 1906 में कलकत्ता में हुए कांग्रेस के अगले अधिवेशन में भी भाग लिया, किंतु उसे उग्रवादियों के बीच बढ़ते हुए मतभेद को देखकर दुख हुआ। वह भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के लिए चिंतित थी और उसे दलों की संख्या में वृद्धि होते देख वितृष्णा-सी हुई। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय ध्वज का एक नमूना तैयार किया गया। उसमें वज्र को प्रतीक के रूप में लेकर उस पर 'वंदे मातरम' शब्द अंकित किए गए। उसे यह प्रेरणा महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा से मिली। महर्षि दधीचि ने वज्र के निर्माण के लिए अपनी अस्थियों का बलिदान किया था। निवेदिता के लिए वज्र त्याग की भावना का प्रतीक था। उसने राष्ट्रीय ध्वज के लिए अन्य नमूने भी तैयार करवाए थे। यद्यपि इस प्रतीक को सामान्यतया सभी ने स्वीकार कर लिया था, किंतु राष्ट्रीय ध्वज के अंतिम रूप का निर्णय करते समय इस प्रतीक पर विचार करने का सुझाव नहीं दिया गया। किंतु इससे इस संबंध में निवेदिता के विचारों का महत्व कम नहीं हो जाता।

राजनीतिक आंदोलन में उस समय और तेजी आ गई, जब विदेशी शासकों ने अप्रैल, 1906 में बारीसाल में हो रहे सम्मेलन को अपनी क्रूर शक्ति द्वारा भंग कर दिया। इस सम्मेलन में सभी प्रमुख नेता मौजूद थे। 1907 में सूरत के अधिवेशन में कांग्रेस विभाजित हो गई। तब उग्रवादियों ने, जो कि राष्ट्रवादी भी कहलाते थे, इस पर कब्जा कर लिया। अरविंद घोष राष्ट्रवादियों के नेता बन गए और उन्होंने 'वंदे मातरम' के संपादन में बिपिनचंद्र पाल को सहयोग देना शुरू कर दिया। वह उस क्रांतिकारी आंदोलन के प्रेरणा-स्त्रोत थे, जो गुप्त समितियों के माध्यम से बड़ी तेजी से विकसित हुआ। सिस्टर निवेदिता की फ्रांसीसी जीवनीकार मदाम लिजेल रेमंड का यह कथन है कि निवेदिता का इन समितियों से गहरा संबंध था। यहां तक कि उसने बम बनाने वाले युवकों को डा. जगदीशचंद्र बोस, तथा रसायन-शास्त्र के अग्रणी प्रोफेसर डा. पी.सी. राय (जो कि एक महान समाज-सेवी भी थे) के सहायक बनाकर कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज की प्रयोगशालाओं तक पहुंचने में सहायता भी की। मदाम रेमंड ने यह भी लिखा है कि निवेदिता का मुरारीपुकुर प्रयोगशाला

से संबंध था, जहां बम बनते थे और जिसका पता लगने पर अनेक क्रांतिकारियों पर मुकदमा चलाया गया। यह प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या निवेदिता वास्तव में इस सीमा तक इस प्रकार की गुप्त गतिविधियों से संबद्ध थी? क्योंकि अब वह भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए बड़े उत्साह से काम कर रही थी, और स्वभावतया वह इस महान कार्य के प्रति पूरी तरह समर्पित थी, जिसमें उसका विश्वास था। इसके साथ साथ वह उस शक्ति की उपासना में पूर्णतया लीन थी, जिसे उसने स्वामी जी के उपदेशों और 'काली' की उपासना से ग्रहण किया था। अतः यह न्यायसंगत प्रतीत होता है कि उसने जो कुछ भी किया, वह क्रांतिकारियों की सहायता के लिए किया। सरकार ने भी उसकी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखी, और उसके पत्रों को सेंसर किया। इसका प्रभाव वह पत्र है, जो उसने आगे चलकर पोस्टमास्टर जनरल को लिखा था। उसका हृदय और मस्तिष्क भारत को उसकी प्रतिभा, परंपरा और उसके गौरवशाली अतीत के अनुरूप ही एक महान राष्ट्र बनाने के विचार से आंदोलित थे। उसके गुरु स्वामी विवेकानंद चाहते थे कि युवकों की मांसपेशियां लोहे की तरह और स्नायु इस्पात की तरह हों। उनका दर्शन पुरुषत्व-निर्माण का दर्शन था। इस दर्शन से क्रांतिकारी इतने अधिक प्रेरित हुए कि उन्होंने स्वामी जी की कृतियों तथा 'गीता' और 'चंडी' को अपना सदा का साथी बना लिया था। विदेशी सरकार भी उन्हें और उनके साहित्य को क्रांतिकारी कार्यकलाप से संबद्ध मानती थी। सिस्टर निवेदिता राष्ट्र-निर्माण के कार्य को पुरुषत्व-निर्माण के लक्ष्य की पूर्ति समझती थी। कुमारी मैक्लियोड को अपने 4 अप्रैल, 1903 के एक पत्र में निवेदिता ने लिखा कि भारतीय राष्ट्र को रामकृष्ण तथा विवेकानंद के धार्मिक विचारों के सामंजस्य से अवश्य प्रेरणा मिलनी चाहिए और उसे अपनी राष्ट्रीयता को गहन तथा पूर्ण रूप से पहचानना चाहिए। यद्यपि देश के पतन के प्रति वह सचेत थी, किंतु उसका यह विश्वास था कि न तो रूढ़िवादिता और न ही मात्र विदेशी-विचारों को अपनाने से देश का उद्धार हो सकता है। उसका यह विश्वास था कि भारत में अपने-आप में ही इतनी शक्ति है कि वह अपना पुनरुत्थान स्वयं कर सकता है, जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि देश में राजनीतिक तथा आर्थिक धाराओं की परिधि के बाहर भी जीवन की अनेक धाराएं विद्यमान हैं। उसने भारत के पुनरुद्धार की बहुमुखी कल्पना की थी। उसका यह सपना था कि भारत का पुनरुद्धार सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तरों पर होना चाहिए और इन सबका पोषण भारतीय जीवन की गहरी वास्तविकता द्वारा होना चाहिए। पुनरुद्धार की इसी भावना को उसने अपनी वाणी, लेखनी और कर्म द्वारा पूरा करने का भरसक प्रयास किया। इसका परिणाम जितना व्यापक उतना ही स्थायी था।

7

जीवन पथ पर

बनारस में 1905 में हुए कांग्रेस-अधिवेशन के बाद निवेदिता कुछ दिनों तक वहां रही। वहां उसने साधारण ढंग से स्थापित किए गए एक सेवागृह के लिए काम किया। वह सेवागृह तीन साल पहले ही शुरू किया गया था। लंबे अर्से से वह राजस्थान जाने को उत्सुक थी। अब उसकी कामना पूरी हुई और अब वह अपने दल के साथ राजस्थान की यात्रा पर गई। निवेदिता उस प्रदेश से जुड़ी हुई ऐतिहासिक स्मृतियों से बहुत प्रभावित हुई। उस दिन जब वे चित्तौड़ पहुंचे, तो रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी और चारों ओर चांदनी छिटकी हुई थी। चित्तौड़ का किला एक मील की दूरी पर दिखाई दे रहा था। वे सब एक शिला पर बैठे थे। उसी समय निवेदिता अतीत में डूब गई और उसका मन चित्तौड़ की गौरव रानी पद्मिनी की कल्पना में खो गया। उसके कुछ समय बाद यह दल बनारस लौट आया। बनारस में निवेदिता की भेंट सुप्रसिद्ध ब्रह्म समाजी महिला श्रीमती एनी बेसेंट से हुई। श्रीमती बेसेंट ने भी भारत को अपने देश के रूप में ग्रहण किया था और वह देश की एक प्रमुख नेता बन चुकी थी। निवेदिता ने यहां जनता के समक्ष कुछ व्याख्यान भी दिए।

इसके बाद यह दल 22 जनवरी, 1906 को कलकत्ता लौट गया। यह वह वर्ष था जब निवेदिता के दो निकटस्थ साथियों का निधन हो गया। इनमें से एक 'प्रबुद्ध भारत' के संपादक स्वामी स्वरूपानंद थे। इन्होंने निवेदिता की हिंदू-धर्म को समझने में सहायता की थी। दूसरी आदरणीया 'गोपालेर मां' या गोपाल की मां थीं, जिन्हें गोपालेर मां इसलिए कहा जाता था, क्योंकि स्वामी रामकृष्ण स्वयं उन्हें अपनी मां कहकर बुलाया करते थे। श्रीमती बुल तथा कुमारी मैक्लियोड की भी इनसे पहले बेलूर के एक समारोह में और बाद में 1898 में कामारहट्टी में भेंट हुई थी और वे भी मां के संत-स्वभाव से अत्यधिक प्रभावित हुई थीं। 10 दिसंबर, 1903 से लेकर ढाई वर्ष तक वह निवेदिता के साथ रहीं और उसके बाद 6 जुलाई, 1906 को तिरानवे वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया। इन दोनों की मृत्यु से निवेदिता के जीवन में एक प्रकार की रिक्तता आ गई। इसके बाद पूर्वी बंगाल में अकाल की दुखद घटना हुई और निवेदिता वहां सहायता पहुंचाने जल्दी से पहुंच गई।

उसने 'ग्लिंपसेस ऑव फेमिन एंड फ्लड इन ईस्ट बंगाल इन 1906' में भी अपने अनुभव के बारे में लिखा। कलकत्ता लौटने पर वह गंभीर रूप से बीमार हो गई और सिस्टर क्रिस्टीन और बेलूर के स्वामी ब्रह्मानंद तथा स्वामी शारदानंद ने उसकी सेवासुश्रूषा की। स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए वह आनंद मोहन बोस के डमडम स्थित निवास-स्थान पर रहने चली गई। वह कुछ लेखन-कार्य करने के लिए वहां कुछ दिनों के लिए और ठहर गई। 'प्रबुद्ध भारत' के लिए 'ओकेजनल नोट्स' लिखने के अतिरिक्त उसने 'क्रैडल टेल्स ऑव हिंदूइज्म' तथा 'द मास्टर ऐज आई सा हिम' नामक पुस्तकों का प्रणयन भी शुरू किया। उसने डा. जगदीशचंद्र बोस की कृति कंपैरेटिव इलेक्ट्रोसाइकॉलोजी' के लेखन कार्य में भी उनकी सहायता की। श्रीमती सेवियर्स 1907 में कलकत्ता आई और निवेदिता के साथ ही डमडम में ठहरीं और उन्होंने स्वामी स्वरूपानंद द्वारा किए गए 'गीता' के अनुवाद के प्रूफ पढ़ने में निवेदिता की सहायता की। निवेदिता और क्रिस्टीन दोनों बोस-दंपत्ति के साथ मायावती गए। उस समय स्वामी विराजानंद मायावती केंद्र की देख रेख कर रहे थे। उन्होंने स्वामी जी के संपूर्ण साहित्य को छापने का काम अपने हाथ में ले लिया था, जिसके प्रकाशन की व्यवस्था स्वामी स्वरूपानंद ने की थी। सिस्टर निवेदिता ने स्वामी जी के साहित्य की भूमिका लिखना स्वीकार कर लिया था और उसने कलकत्ता लौटने पर 'आवर मास्टर एंड हिज मैसेज' शीर्षक से यह भूमिका लिखी। उस समय उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, इसलिए कुमारी मैक्लियोड तथा श्रीमती बुल ने उससे आग्रह किया कि वह जलवायु-परिवर्तन के लिए पश्चिम घूम आए। उस समय देश का वातावरण भी अधिक अनुकूल नहीं था, क्योंकि सरकार ने भी कठोर दमन की नीति अपना रखी थी। लाला लाजपतराय जैसे राजनीतिक नेताओं को बंदी बनाने और उन्हें निर्वासित करने की घटनाओं से निवेदिता को आघात पहुंचा। स्वामी विवेकानंद के भाई और 'युगांतर' के उप संपादक भूपेंद्रनाथ दत्त को गिरफ्तार कर लिया गया था। निवेदिता ने उन्हें जमानत पर छुड़ा लिया, किंतु थोड़े दिनों के बाद ही उन्हें एक साल कैद की सजा दी गई। जेल से छूटने पर वह अमरीका के लिए रवाना हो गए। इस बीच डा. जगदीशचंद्र बोस की 'प्लांट रेसपांस' तथा 'कंपैरेटिव-इलेक्ट्रोसाइकॉलोजी' नामक पुस्तकों ने धूम मचा दी और उन्हें यूरोप जाने का निमंत्रण मिला। उन्होंने निवेदिता से अपने साथ चलने का अनुरोध किया, इसलिए उसने 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रबुद्ध भारत' नामक दोनों पत्रिकाओं के लिए पहले से ही सामग्री तैयार कर ली। इसके बाद वह मां शारदामणि से मिलने गई फिर वह बेलूर मठ और दक्षिणेश्वर गई। इसके बाद वह यूरोप के लिए रवाना हो गई। निवेदिता ने जहाज में भी अपना लेखन-कार्य जारी रखा। उसे क्रिस्टीन के पत्र से यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि बालिका विद्यालय फिर से खुल गया और पूरी तरह से काम कर रहा है। उसका अपनी मां, बहन और भाई से पांच वर्ष के बाद दुबारा मिलन हुआ और वह सितंबर, 1907 से कुछ सप्ताह तक उनके साथ रही। उसकी मां

मेरी ने अपनी बेटी की हिंदू जीवन-पद्धति की बेहद सराहना की, जिससे निवेदिता को काफी सांत्वना मिली। इसके बाद नवंबर में वह यूरोप गई। वहां वह जर्मनी में बोस-दंपति से मिली और बाद में कुमारी मैक्लियोड और श्रीमती लेगेट से भी पेरिस में मिली। बोस-दंपत्ति के साथ वह इंग्लैंड लौट आई और वहां फिर अपनी मां के पास ठहरी। इसी समय उसकी पुस्तक 'क्रेडल टेल्स ऑव हिंदूइज्म' प्रकाशित हुई और यह काफी सफल रही। इंग्लैंड में उसका समय भारत से संबंधित विषयों पर व्याख्यान देने, लेख लिखने तथा परिचर्चा करने में बीता। वह 1908 में प्रिंस क्रोपोट्किन से दुबारा मिली। उन्होंने उसे बताया कि रूस और भारत की परिस्थितियां एक जैसी हैं और आशा व्यक्त की कि दोनों देशों में एक दिन सामाजिक क्रांति अवश्य आएगी। उस समय गोखले, बिपिनचंद्र पाल, रमेशचंद्र दत्त तथा आनंदकुमार स्वामी जैसे अग्रणी भारतीय एवं रैटक्लिफ तथा कलकत्ता के राजकीय कला-विद्यालय के प्रधानाचार्य हेवल भी इंग्लैंड में मौजूद थे। सिस्टर निवेदिता उन सबसे मिली और उसने भारत के लिए अपना काम जारी रखा। वह ऐसे अनेक संसद-सदस्यों तथा पत्रकारों से भी मिली, जो भारत के प्रति सहानुभूति रखते थे। इनमें सर हेनरी कॉटन, डा. बी.एच. रुदरफोर्ड, श्रीमती कीर हार्डी, विलियम रेडमंड और 'रिव्यू ऑव रिव्यूज' के विलियम स्टेड प्रमुख थे। इस तरह उसने भारत के लिए अनथक काम किया।

इस बीच भारत में राजनीतिक तनाव बहुत बढ़ गया था। नरम दल और उग्र-पंथियों के बीच पूरी तरह दरार पड़ गई थी। क्रांतिकारी हिंसा और सरकारी दमन—दोनों का बोलबाला था। खुदीराम बोस द्वारा कलकत्ता के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की मुजफ्फरपुर में हत्या करने का प्रयास, दो यूरोपीय महिलाओं की आकस्मिक मृत्यु, बंगाल के उप-राज्यपाल सर एंड्रियू फ्रेजर की हत्या का प्रयास, सरकारी गवाह नरेन गोस्वामी की अलीपुर जेल में हत्या, श्री अरविंद और बिपिनचंद्र पाल की गिरफ्तारी, अश्विनी कुमार दत्त तथा आठ अन्य व्यक्तियों का देश-निकाला—इन सभी घटनाओं के समाचार ने निवेदिता को बुरी तरह हिला दिया था। किंतु उसे विदेश में और अधिक महत्वपूर्ण काम करना था, इसलिए वह डा. जगदीशचंद्र बोस के साथ एक महीने के लिए आयरलैंड की यात्रा पर गई। इसके बाद वे अमरीका गए, वहां से बोस्टन में श्रीमती ओल बुल के साथ ठहरे। मेन में निवेदिता 'कम्यूनिटी ऑव ग्रीनएकर' भी देखने गई। यहां स्वामी विवेकानंद कुछ समय के लिए कुमारी फाराह जे. फार्मर के निमंत्रण पर ठहरे थे। वहां स्वामी जी ने अपने दिन चिंतन-मनन और अपने शिष्यों को उपदेश देखने में बिताए थे। निवेदिता को वहां के वातावरण में स्वामी जी की पवित्र उपस्थिति का भान हुआ। वहां उसने पुराने मित्रों से भी भेंट की। वह कुमारी मैक्लियोड और श्रीमती लेगेट से भी मिली और नवंबर-दिसंबर, 1907 में वह एक लंबी व्याख्यान यात्रा पर निकल गई। इस बीच उसने अपने स्कूल के लिए धनराशि भी एकत्र की। न्यूयार्क में उसने कुछ दिन एक प्रसिद्ध गायिका कुमारी एम्मा थर्सबी के साथ भी बिताए।

उस समय के एक सुप्रसिद्ध पत्रकार एफ.आई. एलेक्जेंडर निवेदिता से मिले। निवेदिता ने उन पर एक गहरा प्रभाव छोड़ा था। उसका उन्होंने एक विशद वर्णन तैयार किया। निवेदिता ने न्यूयार्क में भी 'भारत के धर्म और संस्कृति तथा पश्चिमी विचारधारा पर उनका प्रभाव' नामक विषय पर वार्ताएं प्रस्तुत कीं। वह जे.टी. संडरलैंड से मिली, जिन्होंने 'अमरीकी लीग' के प्रधान के रूप में भारत के स्वाधीनता आंदोलन का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। वह जिन भारतीय क्रांतिकारियों से मिली, उनमें डा. तारकनाथ दास और डा. भूपेंद्रनाथ दत्त भी थे। डा. दत्त ने यह स्वीकार किया है कि निवेदिता ने अमरीका में उनकी शिक्षा की व्यवस्था की। अमरीका में निवेदिता ने जो एक अत्यंत महत्वपूर्ण काम किया, वह था स्वामी विवेकानंद के पत्र एकत्र करना। इस बीच डा. जगदीशचंद्र बोस अमरीकी विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देते रहे थे। निवेदिता ने उनके साथ भारत लौटने की योजना बनाई। किंतु इस बीच उसे समाचार मिला कि उसकी मां कैंसर से पीड़ित है और वह काफी कष्ट में है। यह सुनकर निवेदिता ने अपनी मां को सांत्वना देते हुए एक पत्र लिखा, जिसमें उसने स्वामी रामकृष्ण और विवेकानंद के दिव्य जीवन से प्रेरणा ग्रहण करने का अनुरोध किया। जनवरी 1909 में वह अमरीका छोड़कर अपनी मां के पास आ गई। निवेदिता की मां उसे अपने समीप पाकर अत्यंत प्रसन्न हुई और 26 जनवरी को उसने शांतिपूर्वक प्राण त्याग दिए। निवेदिता अपने भाई और बहन के साथ वहां कुछ दिन और रही। उसने अपनी मां को वचन दिया था कि वह अपने पिता के उपदेशों को व्यवस्थित रूप देगी। उसने अपना वचन पूरा किया। उसके बाद वह स्वामी विवेकानंद के पत्रों को श्री स्टर्डी के पास ले गई। अप्रैल में अपने भाई और बहन के साथ वह अपनी मां की अस्थियां आयरलैंड में ग्रेट टोरिंगटन नामक स्थान पर ले गई और उनको अपने पिता की समाधि के समीप अवस्थित किया। उसके पिता के अंतिम संस्कार के समय जो लोग मौजदू थे, वे इस अवसर पर भी मौजूद थे। निवेदिता ने श्रीमती बुल को लिखा कि उसे इस बात का संतोष है कि उसके माता-पिता अपने पूर्वजों के स्थान पर और शांतिपूर्ण, प्राकृतिक परिवेश में साथ साथ अंतिम विश्राम कर रहे हैं।

सिस्टर निवेदिता अब भारत लौटने को तैयार थी। बोस-दंपति मार्च में इंग्लैंड लौट आए, और मई में यूरोप चले गए, जहां उनके पीछे पीछे कुमारी मैक्लियोड, श्रीमती बुल और सिस्टर निवेदिता भी पहुंच गईं। 2 जुलाई, 1909 को उन्होंने समुद्री-मार्ग से भारत के लिए प्रस्थान किया। किंतु उसी दिन लंदन में एक भारतीय ने इंडिया कार्यालय के एक अधिकारी सर कर्जन वाइली की हत्या कर दी। इस समाचार ने निवेदिता को व्याकुल कर दिया। वह अंत में 18 जुलाई, 1909 को कलकत्ता पहुंच गई। उसके जीवनी-लेखकों में से अधिकांश इस बात पर सहमत हैं कि इस अवधि के दौरान निवेदिता कुछ समय तक छद्म वेश में रही, क्योंकि ब्रिटिश पुलिस उसे शक की नजर से देखती थी। इसलिए उसने सामान्य गतिविधियां शुरू करने से पहले थोड़ी सतर्कता बरती, किंतु इस सबके बावजूद उसे राजनीति में और अधिक खुलकर भाग लेना था।

8

दृढ़ संकल्प

यह अलीपुर षड्यंत्र कांड का समय था। सरकार ने दमन की नीति अपना रखी थी। हर जगह तलाशियां और गिरफ्तारियां हो रही थीं। क्रांतिकारी बम बनाकर और बम फेंक कर इस दमन का उत्तर दे रहे थे। तथाकथित मुरारीपुकुर रोड षडयंत्र कांड का पता मई, 1908 में लगा था। यह कांड डेढ़ वर्ष तक चलता रहा था। बारींद्र कुमार घोष ने अपने भाई श्री अरविंद से राजनीतिक शिक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने अपनी आयु के पंद्रहवें वर्ष में विवेकानंद को देखा था और देश के युवकों को संगठित करने में उन्होंने निवेदिता की सहायता ली थी। उन्हें और उल्लासकर दत्त को मृत्यु दंड दिया गया था, जो कि अपील करने पर काले पानी की सजा में बदल दिया गया था। तेरह अन्य व्यक्तियों को कठोर दंड मिला था। श्री अरविंद को बरी कर दिया गया था, जिसका श्रेय चितरंजन दास द्वारा उनके बचाव में की गई सशक्त पैरवी को था। सिस्टर निवेदिता जब भारत लौटी तो उसके अनेक मित्र या तो नजरबंद थे या जेल में थे अथवा उनका निष्कासन हो चुका था। उनमें लोकमान्य तिलक भी थे, जिन्हें छह वर्ष के लिए मांडला जेल भेज दिया गया था। कृष्णकुमार मित्र और अन्य व्यक्तियों को बंगाल से निष्कासित किया जा चुका था। अन्य अनेक व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए थे। कुछ भूमिगत हो गए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि राजनीतिक आंदोलन को उचित नेतृत्व नहीं मिल रहा था। देवव्रत और सचिन नाम के दो क्रांतिकारी, जिनके विरुद्ध लगाए गए अभियोग खारिज कर दिए गए थे, बेलूर मठ के सदस्य बन गए थे। इसके परिणामस्वरूप पुलिस ने मठ पर कड़ी निगरानी रखनी शुरू कर दी थी। मठ के प्रधान स्वामी ब्रह्मानंद ने मठ में बाहर के व्यक्तियों के प्रवेश पर रोक लगा दी थी और उन्होंने निवेदिता के कलकत्ता लौटने पर एक दूसरा बयान जारी किया था, जिसमें उन्होंने फिर इस बात पर जोर दिया था कि निवेदिता के कार्यकलापों के लिए मठ किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं है। निवेदिता ने अरविंद के जेल से छूटने की खुशी में अपने स्कूल में एक समारोह किया। उस समय ऐसा लगता था जैसे कि अरविंद ने पहले की अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक शक्ति अर्जित कर ली थी। उन्होंने स्वयं योग की उस साधना के बारे में लिखा,

जिसका विकास उन्होंने गीता और उपनिषदों के माध्यम से किया। उनका यह दावा था कि जिन दिनों वह जेल में थे, उन्होंने विवेकानंद की वाणी सुनी और पंद्रह दिन तक उनकी उपस्थिति अनुभव करते रहे। उन्होंने इस बीच दो पत्रिकाएं निकालीं, एक अंग्रेजी में 'कर्मयोगिन' थी, और दूसरी बंग्ला में 'धर्म' थी। राष्ट्रीय-प्रयास में नए प्राण फूंकने की दृष्टि से उन्होंने धर्म और राजनीति के समन्वय को इन पत्रिकाओं का सिद्धांत निर्धारित किया। निवेदिता इन पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिख रही थी। श्री अरविंद ने स्वयं स्वीकार किया कि भारत को दक्षिणेश्वर के निरक्षर संत रामकृष्ण ने मुक्ति का मार्ग दिखाया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अभी काम पूरी तरह शुरू नहीं हुआ था और न ही अभी तक व्यावहारिक रूप से विवेकानंद के संदेश पर अमल किया गया है। निवेदिता के सामने यह स्पष्ट था कि श्री अरविंद स्वयं प्राचीन युग के महात्माओं के पदचिह्नों पर चलते हुए आत्मिक-शक्ति प्राप्त करने के लिए कर्म-क्षेत्र के पथ से हट रहे थे। वह उस समय तक 'कर्मयोगिन' के उनतालीस अंक प्रकाशित कर चुके थे, जब उन्हें यह समाचार दिया गया कि सरकार उनके और उनकी पत्रिका के विरुद्ध कार्रवाई करने का विचार कर रही है। उन दिनों निवेदिता प्रायः उन राजनीतिक कार्यकर्ताओं की मंडली में जाया करती थी, जो श्री अरविंद के आसपास इकट्ठे होते थे। यह सूचना भी मिली थी कि श्री अरविंद का निष्कासन होने वाला है। इसलिए निवेदिता ने उन्हें सलाह दी कि वह देश छोड़कर कहीं चले जायें। इस पर श्री अरविंद ने 'कर्मयोगिन' में एक वक्तव्य प्रकाशित किया। यह वक्तव्य उनकी राष्ट्र के नाम अंतिम वसीयत के रूप में था। इसके परिणामस्वरूप उनका निष्कासन कुछ समय के लिए टाल दिया गया। किंतु कुछ समय बाद ही 'कर्मयोगिन' के एक कर्मचारी श्री रामचंद्र मजूमदार ने यह खबर दी कि श्री अरविंद शीघ्र ही गिरफ्तार किए जाने वाले हैं। अब समय नष्ट नहीं किया जा सकता था। श्री अरविंद फरवरी 1910 में चंद्रनगर की फ्रांसीसी बस्ती के लिए रवाना हो गए। निवेदिता के लिए वह एक संदेश छोड़ गए। उस संदेश में उन्होंने निवेदिता से आग्रह किया था कि वह उनकी अनुपस्थिति में पत्रिका का संपादन करती रहे। निवेदिता श्री अरविंद से चंद्रनगर में 14 फरवरी को मिली। वह सरस्वती-पूजा का दिन था। वह उसी महीने की 27 तारीख को फिर उनसे मिली। वह 'कर्मयोगिन' का तब तक संपादन करती रही, जब तक कि अप्रैल, 1910 में इसका प्रकाशन निलंबित नहीं कर दिया गया। तब तक श्री अरविंद पांडिचेरी पहुंच चुके थे।

इस पत्रिका के एक अंक में निवेदिता का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसे उसके वेद-वाक्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यह इस प्रकार था :

"मेरा विश्वास है कि भारत एक है, अखंड है तथा अजेय है।

"राष्ट्रीय-एकता के निर्माण का आधार एक घर, समान हित तथा सामान्य स्नेह की भावना होती है।

"मेरा विश्वास है कि वेदों और उपनिषदों में तथा विभिन्न धर्मों और साम्राज्यों के विनिर्माण में, और विद्वानों के ज्ञान तथा संतों के ध्यान में जो शक्ति मुखरित हुई है, उसी शक्ति का हमारे बीच पुनः प्रादुर्भाव हुआ है और आज इसे राष्ट्रीयता के नाम से जाना जाता है।

"मैं यह भी मानती हूं कि भारत का वर्तमान उसके अतीत के साथ अविच्छिन्न रूप से संयुक्त है, जिससे कि उसके भविष्य की संभावना निश्चित ही उज्ज्वल है।

"हे राष्ट्रीयता मेरे पास आओ, मैं तुम्हारा उल्लास अथवा विषाद, सम्मान अथवा लज्जा किसी भी रूप में तुम्हारा स्वागत करने को तत्पर हूं। तुम मुझे अपना लो।"

निवेदिता पर पहले से ही पुलिस की नजर थी। यहां तक कि उसके साधारण-पत्रों को भी सेंसर किया जाता था और इसलिए विवश होकर, उसे इसकी शिकायत पोस्टमास्टर जनरल को करनी पड़ी। 10 मार्च को वाइसराय की पत्नी लेडी मिंटो छद्म वेश में निवेदिता का स्कूल देखने गईं। स्कूल से लौटने के पूर्व ही उन्होंने अपना वास्तविक परिचय दे दिया, जिससे निवेदिता को बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ। निवेदिता ने लेडी मिंटो पर जो गहरा प्रभाव छोड़ा था, उसके बारे में उन्होंने आगे कहीं लिख कर भी उल्लेख किया। वह बेलूर मठ गईं और दक्षिणेश्वर जाते समय अपने साथ निवेदिता तथा सिस्टर क्रिस्टीन को भी लेती गईं। उन्होंने निवेदिता को चाय पर राजभवन बुलाया और उस पर पुलिस की निगरानी के विषय में चिंता व्यक्त की। उन्होंने निवेदिता को पुलिस-आयुक्त से भेंट करने की सलाह दी और निवेदिता ने ऐसा ही किया।

इससे पूर्व नवंबर, 1909 में लेबर पार्टी के नेता और भावी प्रधानमंत्री श्री रैम्से मैक्डॉनल्ड अपनी कलकत्ता-यात्रा के दौरान निवेदिता से मिले थे। वह भी निवेदिता से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने भारतीय धर्म और दर्शन पर उसके साथ चर्चा भी की थी।

'कर्मयोगिन' का प्रकाशन निलंबित हो जाने के साथ ही सिस्टर निवेदिता कुछ मौन हो गई। भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष के प्रति उसकी जो गहरी प्रतिबद्धता थी, उससे स्पष्ट होता था कि वह भारतीय जीवनधारा में पूर्णतया लीन हो चुकी थी। अब उसे फिर ऐसा लगा, जैसे कि वह अपने दिवंगत गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए भारतीय जीवन रूपी नदी में गहरी डुबकी लगा रही है। उसने जो कुछ भी किया या करना चाहा, उसकी तुलना में उसने अपने स्कूल के कार्य को सर्वोपरि समझा और उसने इसकी तथा इसमें पढ़ने वाले छात्रों की बड़े प्यार से देखभाल की। पश्चिम से लौटने से पूर्व सिस्टर क्रिस्टीन उसका स्कूल चला रही थीं। वहां से लौटकर उसने अपने स्कूल का कार्यभार संभाल लिया तथा सिस्टर क्रिस्टीन जलवायु-परिवर्तन के लिए कहीं चली गईं। पुष्पा देवी नाम की एक अध्यापिका भी कुछ समय तक इस स्कूल में रही थीं। किंतु सिस्टर सुधीर ही बेलूर मठ की सदस्या बनी थीं और उन्होंने पूर्ण समर्पण की भावना से स्कूल में काम किया था। जैसा

कि पहले बताया गया है, सिस्टर सुधीर देवव्रत नामक क्रांतिकारी की बहन थीं। सिस्टर निवेदिता को स्कूल चलाने में वस्तुतया आर्थिक कठिनाई का ही सामना करना पड़ता था। उसे श्रीमती बुल की पुत्री ओलिया से कुछ सहायता प्राप्त हो जाती थी। किंतु वह पर्याप्त नहीं थी। इस बीच खोली गई स्कूल की दो शाखाओं को भी बंद करना पड़ा था। उस समय स्कूल में लगभग सत्तर छात्राएं थीं। निवेदिता उन्हें भूगोल, इतिहास, सिलाई-कढ़ाई तथा चित्रकारी सिखाती थी। वह अत्यधिक अनुशासनप्रिय थी और अपनी शिष्याओं का व्यक्तिगत रूप से ध्यान रखने के कारण वहां अनुशासन बनाए रखने में सफल रही। उसने अपनी शिष्याओं द्वारा बनाए गए खिलौनों तथा चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया। एक दिन सुप्रसिद्ध कला-पारखी आनंद कुमार स्वामी प्रदर्शनी देखने आए और उन्होंने निवेदिता की एक शिष्या द्वारा बनाई गई अल्पना की भूरि भूरि प्रशंसा की, जिससे उसे बहुत प्रसन्नता हुई। स्कूल के पाठ्यक्रम में संस्कृत के अध्यापन की शुरुआत किए जाने के विचार से तथा अपनी शिष्याओं द्वारा ताड़ के पत्तों पर संस्कृत में लिखने की कल्पना से वह अत्यधिक आनंदित हुई। वह अपनी शिष्याओं को धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्व के स्थान दिखाना चाहती थी, किंतु उसकी यह महत्वाकांक्षा पूरी न हो सकी, हालांकि वह उन्हें संग्रहालय, चिड़ियाघर, दक्षिणेश्वर तथा ऐसे ही अन्य अनेक स्थान दिखाने ले गई। उसने इन स्थानों के महत्व का जो वर्णन किया, उससे ये यात्राएं और भी अधिक रोचक हो गईं। उसका सदैव यह प्रयास रहा कि वह अपनी शिष्याओं में भारतवर्ष के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न करे। वह उन्हें ब्रह्मों कन्या पाठशाला ले जाती थी, ताकि वे देशभक्ति के उन भाषणों को सुन सकें, जो निकट के ग्रीन पार्क में दिए जाते थे। उसने अपनी शिष्याओं की हस्तकला की कृतियों को स्वदेशी-प्रदर्शनियों में प्रदर्शित कराने की व्यवस्था की, इसके साथ ही उसने अपने स्कूल में कताई की कक्षाएं भी शुरू कीं। यद्यपि सरकार ने 'वंदे मातरम' के गाए जाने पर प्रतिबंध लगा रखा था, किंतु वह इसे नियमित रूप से अपनी शिष्याओं से गवाया करती थी। वह उसके साथ विवेकानंद की जीवनी का पाठ किया करती थी, और उन्हें प्रायः बेलूर मठ और 'मां' के पास ले जाया करती थी। वह बाल-विधवा शिष्याओं का ध्यान रखती थी। उसने अपने स्कूल को ऐसा स्थान बना दिया था, जहां शिष्याओं को कोरी शिक्षा नहीं दी जाती थी, बल्कि वहां उन्हें मानसिक-संरक्षण भी मिलता था तथा उनमें आत्मविश्वास की भावना भी पैदा की जाती थी। सभी प्रकार की आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयों के होते हुए भी निवेदिता ने स्कूल के लिए काम करने में स्वयं को सदैव धन्य माना।

मां शारदामणि, गांव से जब कभी कलकत्ता आतीं, तो इस स्कूल को अवश्य देखने जातीं। निवेदिता भी उनसे मिलने में चूक नहीं करती। विशेषकर उनके कलकत्ता से भ्रमण पर बाहर जाने से पूर्व वह उनसे एक बार अवश्य मिलती। वह मां शारदामणि का स्वागत

पूरे सम्मान के साथ करती थी। 'मां' के प्रति उसका व्यवहार अत्यधिक श्रद्धापूर्ण होता था और 'मां' के हृदय में भी उसके लिए असीम-स्नेह की भावना थी। निवेदिता मां की सुख-सुविधा का पूरा पूरा ध्यान रखती थी। उसे इस बात का बहुत दुख था कि वह 'मां' के लिए जो कुछ करना चाहती थी, वह नहीं कर पाई थी, क्योंकि उसके पास सदैव धनाभाव रहता था। वह 'मां' को अपनी मां कहकर पुकारती थी तथा मां शारदामणि भी उसे बेटी कहकर बुलाती थीं। मां-बेटी के इस संबंध का परिचय हमें उनके उन पत्रों में भी मिलता है, जो कि निवेदिता के विदेश चले जाने पर समय समय पर उन्होंने एक-दूसरे को लिखे थे। उसने बंग्ला भाषा का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वह 'मां' से बंग्ला में अच्छी तरह बात कर सकती थी और अपने शिष्यों को भी पढ़ा सकती थी। स्वामी विवेकानंद ने मार्गरेट नोबल को भारतीय नारी-मात्र की सेवा करने के लिए ही भारत बुलाया था। मां शारदामणि आदर्श भारतीय नारीत्व का प्रतिरूप थीं। सिस्टर निवेदिता को जिस संतोष एवं शांति की तलाश थी, वह उसे मां शारदामणि के संपर्क में आकर ही प्राप्त हुई थी। निवेदिता जीवन के उस मोड़ पर पहुंच गई थी, जहां अनंत की पुकार का आभास पाते ही वह उस देश की जीवन-धारा के साथ मिलकर एक हो गई, जिसे उसने अपना बना लिया था।

9

अंतिम यात्रा

सिस्टर निवेदिता ने ऐसी यात्रा आरंभ की, जो भारत के शाश्वत जीवन से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने का माध्यम बनी। डा. जगदीशचंद्र बोस, श्रीमती बोस और उनके भतीजे अरविंद मोहन बोस के साथ वह केदारनाथ तथा बद्रीनारायण की तीर्थयात्रा पर रवाना हुई। वे वहां से हरिद्वार होते हुए गए और श्रीनगर होते हुए लौटे। निवेदिता को इस तीर्थयात्रा में भारतीय राष्ट्र की आम जनता के आध्यात्मिक उत्साह का भरपूर अनुभव हुआ। उसने 'माडर्न-रिव्यू' में एक लेख में अपने उन अनुभवों के बारे में लिखा, जो बाद में 'केदारनाथ एंड बद्रीनारायण : ए पिलग्रिम्स डायरी' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए।

तीर्थयात्रा से लौटने पर निवेदिता को श्रीमती साराह बुल की गंभीर बीमारी की सूचना मिली। श्रीमती साराह बुल उसकी बराबर हितैषी रही थीं। धीर माता ने, जैसा कि स्वामी विवेकानंद उसे संबोधित किया करते थे, निवेदिता की स्कूल चलाने तथा उसकी रचनाओं के प्रकाशन में एवं जगदीशचंद्र बोस के कार्य में काफी सहायता की थी। किंतु निवेदिता को इस समय अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उसने श्रीमती बुल को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने यह आशंका व्यक्त की कि वह अपना काम कहीं अधूरा छोड़कर ही न चल बसे। अपनी पूजा की छुट्टियां बिताने वह प्रायः दार्जिलिंग जाती थी। इस बार जब वह वहां पहुंची, तो उसे श्रीमती बुल का भेजा हुआ एक तार मिला, जिसमें उसे यह सूचना दी गई थी कि श्रीमती बुल की हालत नाजुक है और वह उससे मिलना चाहती हैं। इसीलिए निवेदिता फौरन ही जहाज से उनके पास पहुंच गई और अंतिम समय तक उनके पास रही। उसने स्वामी जी की रचनाएं श्रीमती बुल को पढ़कर सुनाईं और उन दिनों के संस्मरण सुनाए, जब वे इकट्ठे रहते थे। इसी समय उसने 'द प्रेजेंट प्रोजीशन ऑव विमैन' नामक विषय पर एक निबंध भी लिखा और उसे लंदन के 'यूनिवर्सल रेस कांग्रेस' को भेज दिया। इस समय उसका सारा ध्यान श्रीमती बुल पर ही केंद्रित रहता था और एक दिन जब वह उनके लिए भारतीय चर्च में प्रार्थना कर रही थी उसे यह अनुभूति हुई कि मैडोना ही 'मां' है। उसने तब 'मां' को एक पत्र लिखा। किंतु एक तरह से उसके

लिए वे दिन चिंता के दिन थे। श्रीमती बुल के भाई श्री ई.जी. थॉर्प तथा श्रीमती बुल की पुत्री ओलिया उस समय वहीं थे और ओलिया के मन में निवेदिता के प्रति वितृष्णा की भावना पैदा हो गई। उसे शक था कि निवेदिता उसकी मां का धन हड़प जाना चाहती है। श्रीमती बुल का देहावसान 18 जनवरी 1911 को हुआ। निवेदिता तत्काल भारत लौटना चाहती थी, किंतु उसे श्रीमती बुल की उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए वहां रुकना पड़ा, जो वह अपनी वसीयत में छोड़ गई थीं। वह अपनी एक अन्य मित्र कुमारी एलिस लांगफेलो के घर रहने चली गई। किंतु ओलिया ने अपनी मां की वसीयत पर विवाद खड़ा कर दिया। निवेदिता ने इस मामले को श्री थॉर्प को सौंप कर अमरीका से चले जाने का फैसला कर लिया। इसी समय उसे स्वामी सदानंद की मृत्यु की सूचना मिली, जिससे उसके मन को आघात लगा। स्वामी विवेकानंद की मृत्यु के बाद स्वामी सदानंद ही उसके मित्र, साथी और सहयोगी थे। वह अमरीका जाने से पहले बीमारी में उनकी देखभाल करती रही थी। भारत लौटते समय वह लंदन में रैटक्लिफ और दूसरे मित्रों से मिली। पेरिस में उसने कुमारी मैक्लियोड तथा श्रीमती लैगेट से भेंट की। अपने मित्रों से उसकी वह आखिरी मुलाकात थी। वह 23 मार्च, 1911 को समुद्री मार्ग द्वारा मारसिलेस से भारत के लिए रवाना हुई, 7 अप्रैल को बंबई पहुंची और उसके बाद कलकत्ता लौट आई। कलकत्ता में वह 'मां' से मिली। 'मां' उस समय दक्षिण भारत की यात्रा से वापिस लौटी थीं। बेलूर मठ में वह स्वामी ब्रह्मानंद तथा स्वामी तूर्यानंद से मिली। मृत्यु के पूर्वबोध की भावना उसके मन में गहरी होती जा रही थी और वह इस चिंता से व्याकुल थी कि कहीं ऐसा न हो कि वह उतनी सेवा न कर सके, जितनी सेवा की स्वामी जी उससे अपेक्षा रखते थे। इसी समय वह डा. जगदीशचंद्र बोस और उनके भतीजे अरविंद बोस के साथ मायावती आश्रम गई। उसने डा. बोस की नयी पुस्तक तैयार करने में सहायता की। डा. बोस ने अद्वैत आश्रम में एक व्याख्यान दिया और निवेदिता ने भी आश्रमवासियों से बौद्धिक संस्कृति (इंटलेक्चुअल कल्चर) पर बातचीत की। 3 जुलाई, को वे कलकत्ता लौट आए। इस समय सिस्टर निवेदिता अपने स्कूल के भविष्य को लेकर क्षुब्ध थी, क्योंकि श्रीमती बुल के मरणोपरांत मिलने वाली धनराशि उसे प्राप्त नहीं हो सकी थी। वह सरकार से आसानी से आर्थिक सहायता ले सकती थी और लेडी मिंटो भी इस काम में उसकी सहायता करने को तैयार थीं, किंतु निवेदिता का यह सिद्धांत था कि वह विदेशी सरकार की सहायता स्वीकार नहीं करेगी। वस्तुतया सिस्टर निवेदिता गर्ल्स स्कूल ने राष्ट्रीय सरकार के बनने तक विदेशी सरकार से कोई सहायता स्वीकार नहीं की। किंतु उसके कुछ दिनों के बाद ही उसे श्री थॉर्प ने सूचना दी कि श्रीमती बुल की वसीयत की शर्तों के अनुसार स्कूल को कुछ धनराशि मिल सकेगी। यह सूचना पाकर उसे बहुत बड़ी राहत मिली, हालांकि इस दौरान उसे अनेक प्रियजनों की मृत्यु के आघात सहने पड़े। वह विवेकानंद की मां भुवनेश्वरी देवी की मृत्यु के समय उनके पास

थी। इसके बाद उसे श्रीमती बुल की पुत्री ओलिया की आकस्मिक मृत्यु का समाचार मिला। निवेदिता को इससे एक झटका लगा, हालांकि ओलिया उससे घृणा करती थी। दूसरा झटका उसे स्वामी विवेकानंद के सच्चे और समर्पित साथी स्वामी रामकृष्णानंद की मृत्यु का समाचार सुनकर लगा। स्वामी रामकृष्णानंद के संपर्क में निवेदिता अपनी मद्रास यात्रा के दौरान आई थी और उनकी आध्यात्मिकता से वह अत्यधिक प्रभावित हुई थी। इसी समय निवेदिता पर और भी कई तरह के संकट आए। उन दिनों सिस्टर क्रिस्टीन अमरीका की यात्रा पर गई हुई थीं और वहां से वापिस लौटने पर वह मायावती चली गई थीं। जब निवेदिता वहां गई तो क्रिस्टीन ने उससे कहा कि वह अब उसके साथ नहीं रहेंगी और ब्रह्मों कन्या विद्यालय में अध्यापन कार्य आरंभ करेंगी। निवेदिता क्रिस्टीन की बराबर प्रशंसक थी और उसने हर तरह से मौखिक और लिखित रूप से उनका गुणगान किया था। निवेदिता यह बात जान नहीं पाई थी। इसके बावजूद भी क्रिस्टीन का उससे एकाएक विमुख हो जाना, उसके लिए अत्यधिक दुखदायक था। निवेदिता ने स्कूल के लिए श्रमपूर्वक कार्य करना जारी रखा, हालांकि उसे अपना लेखन कार्य करने के साथ साथ डा. बोस की भी सहायता करनी पड़ती थी। इसके बाद सिस्टर सुधीर भी संभवतया क्रिस्टीन के प्रभाव में आकर ब्रह्मों कन्या विद्यालय में पढ़ाने के लिए उसका स्कूल छोड़कर चली गई। उसके लिए यह एक और आघात था। निवेदिता ने उन्हें वापस लाने की भी कोशिश की, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। सिस्टर क्रिस्टीन और सिस्टर सुधीर दोनों ही निवेदिता से दुबारा नहीं मिलीं। कुछ समय बाद उन्हें दार्जिलिंग में निवेदिता की बीमारी की सूचना मिली और उन्होंने वहां जाना चाहा, तो उस समय तक बहुत देर हो चुकी थी।

सिस्टर निवेदिता दार्जिलिंग जाने से पहले अनेक लोगों से विदा लेने गई। वह सुप्रसिद्ध नाटककार गिरीशचंद घोष से मिली। इन दिनों बीमार होते हुए भी वह 'तपोबल' नामक नाटक लिखने में व्यस्त थे। निवेदिता ने दार्जिलिंग से लौटने पर उस नाटक को पढ़ने की इच्छा व्यक्त की। किंतु उन्हीं दिनों दार्जिलिंग में उसकी मृत्यु हो जाने का समाचार मिलने पर गिरीशचंद्र घोष ने वह पुस्तक सिस्टर निवेदिता को समर्पित कर दी। वह स्वामी शारदानंद, गोपालेर मां और योगिन मां से शारदामणि मां के घर पर मिली। उसके बाद वह बोस दंपति के साथ दार्जिलिंग चली गई। वहां उसके शुरू के कुछ दिन शांति से गुजर गए। कुछ दिनों बाद उन्होंने दूरवर्ती संडक-फू चोटी देखने की योजना बनाई, किंतु रवाना होने के दिन निवेदिता को खूनी पेचिश हो गई। उस समय के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा. नीलरत्न सरकार उन दिनों दार्जिलिंग में ही थे। किंतु उनकी चिकित्सा से भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ। निवेदिता अपने सिर पर मंडराती हुई मृत्यु का साहसपूर्वक सामना कर रही थी। ऐसा लगता था कि उसने इससे पहले मृत्यु के बारे में जो कुछ लिखा था, उसकी अनुभूति उसे अब हो रही थी :

"कल रात मैंने उसके बारे में सोचा जो इस भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है और जो इसके कण कण में समाया हुआ है, उसके अतिरिक्त एक और शक्ति भी है, जिसे चिंतन अथवा मनन या कुछ भी कहा जा सकता है और संभवतया मृत्यु की पहचान इन्हीं से होती है। विषय यह नहीं है कि इससे किसी का स्थान-परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि इसका कोई स्थान होता ही नहीं है, अपितु इसका अर्थ तो उस स्थिति में उत्तरोत्तर गहराई में उतरते जाना है, जहां मनुष्य को अपने शरीर की सुध-बुध ही न रहे। यदि हमें अपने दिवंगत प्रियजनों के बारे में सोचने से सुख मिलता हो तो वे वस्तुतया शारीरिक दृष्टि से हमारे बहुत निकट आ सकते हैं, और हम फिर भी एक अनंत विस्तारपूर्ण स्वतंत्रता तथा आनंद का अनुभव कर सकते हैं।

"और तब मैंने ईश्वर के बारे में सोचा, जो इस प्रकार असीम जगत में व्याप्त है, और इस तरह हमने इन दोनों की सीमा-रेखा पर खड़े होकर, असीम जगत में निस्सीम ईश्वर अर्थात दोनों का ही स्वर्गिक आनंद लेना चाहा। मैं बार बार यह सोच रही हूं कि मृत्यु का अर्थ केवल लौटकर समाधिस्थ हो जाना है, एक पत्थर का अपने अस्तित्व के कुएं में विलीन हो जाना है। इसकी शुरुआत एक लंबे मौन के साथ होती है, जबकि मन अपने अस्तित्व की विशिष्ट विचार-शृंखला में डूबा रहता है। यह विचार शृंखला समस्त विचारों, क्रियाकलापों तथा अनुभवों का अवशिष्ट पुंज मात्र होती है। इन्हीं क्षणों में आत्मा अपना चोला छोड़ रही होती है और एक नए जीवन की शुरुआत हो चुकी होती है।"

"मुझे आश्चर्य होता है कि क्या इस प्रकार एक समग्र जीवन को ऐसे प्रेम और ईश्वरीय वरदान का स्वरूप प्रदान करना संभव होगा, जिसमें प्रतिकूल आवेग की एक लहर भी न हो; जिसमें व्यक्ति मृत्यु के अंतिम क्षणों में एक महान विचार में पूर्ण रूप से तल्लीन हो जाए ताकि वह अनंत में अहं के विचार से मुक्त हो सके और संसार की समस्त इच्छाओं तथा कष्टों के निवारण के लिए शांति तथा मंगल-कामना हेतु स्वयं को अर्पित कर दे।"

दार्जिलिंग जाने से पहले निवेदिता ने एक बौद्ध प्रार्थना का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराके उसे लोगों में बंटवाया था। इस समय वह प्रार्थना उसे पढ़कर सुनाई गई :

"उन सभी को, जिनमें जीवन है, शत्रुओं के बिना, बाधाओं के बिना, दुखों पर विजय पाते हुए तथा प्रफुल्लित होकर अपने अपने मार्ग पर निर्बाध आगे बढ़ने दो।

"पूर्व में, पश्चिम में, उत्तर और दक्षिण में, जितने भी ऐसे प्राणी हैं, जिनका कोई शत्रु नहीं है, जिनके सम्मुख कोई बाधा नहीं है, उन्हें दुखों पर विजय पाते हुए तथा प्रफुल्लित होकर अपने अपने मार्ग पर निर्बाध आगे बढ़ने दो।"

उसने मंद स्वर में अपनी प्रिय प्रार्थना की : "अवास्तविक से वास्तविक की ओर! अंधकार से प्रकाश की ओर हमारा मार्गदर्शन करो; मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ! हे रुद्रदेव हमारे अंतरतम में प्रवेश करो और अपने मधुर कृपालु मुखमंडल से हमारी अज्ञान

से रक्षा करो।"

इसके बाद 13 अक्टूबर, 1911 का दिन आया। उसने कहा कि अभी सूर्योदय देखेगी। जिस समय उसने उस गंतव्य स्थान की ओर अपनी यात्रा आरंभ की जहां से कोई यात्री कभी वापस नहीं लौटता तभी सूर्य की किरणों ने उसके कमरे को रोशनी से भर दिया।

उस समय दार्जिलिंग में उपस्थित कलकत्ता के सभी गणमान्य नागरिकों ने निवेदिता की शव-यात्रा में भाग लिया। इस अंतिम यात्रा में दार्जिलिंग के सभी वर्गों के लोगों ने भी भाग लिया। शाम के सवा चार बजे चिता को अग्नि दी गई। रामकृष्ण मिशन के गणेन महाराज ने निवेदिता का अंतिम संस्कार किया। वह सदैव उसके निष्ठावान साथी रहे थे। रात आठ बजे तक सब कुछ निपट चुका था। दार्जिलिंग के नागरिकों ने उसकी अंत्येष्टि के स्थान पर एक स्मारक बनाया। इसी मौन वातावरण में उसकी समाधि है : **सिस्टर निवेदिता की यह विश्राम-स्थली है, जिसने अपना सर्वस्व भारत को अर्पित कर दिया।**

जन्म से आयरिश निवेदिता ने भारत को अपना घर बना लिया था और जो भारत की आध्यात्मिकता में पूरी तरह रम चुकी थी, तथा जिसने अपने जीवन के अंतिम क्षण तक इस देश की सेवा की, संसार से इस संतुष्टि के साथ विदा ली कि उसने अपने गुरु के नीति-वचनों का अच्छी तरह पालन किया है।

10

युग पर प्रभाव

भारतीय इतिहासकारों में अग्रणी डा. यदुनाथ सरकार ने अन्य लोगों के बारे में लिखते हुए 'हाउस ऑव सिस्टर्स' के बारे में भी लिखा है। यह घर निवेदिता तथा क्रिस्टीन-बहनों का निवास स्थान था। वहां दिन-रात पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की भीड़ लगी रहती थी। तत्कालीन प्रमुख व्यक्ति वहां हर रविवार की सुबह एकत्र हुआ करते थे और इस मिलन-स्थल पर सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यों की अनेक योजनाएं बना करती थीं। वहां सरकार के उच्चाधिकारी, जन नेता कलाकार तथा लेखक मिला करते थे और सर्वहित के विषयों पर चर्चा किया करते थे। आम लोग भी निवेदिता के पास जाते थे और उनमें से अनेक लोग अपने निजी स्वार्थवश जाते थे। विभिन्न क्षेत्रों में उसका जो प्रभाव था, उसके स्थायी परिणाम हुए। उसने जिस बेलाग तरीके से जगदीशचंद्र बोस की सहायता की, उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। कुछ ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने बोस को दबाने का प्रयास किया, यहां तक कि उन्होंने उनकी कृतियों के प्रकाशन को भी रोकना चाहा तथा उन्हें प्रकाश में न आने देने या चुराने का भी प्रयास किया। इससे वैज्ञानिक डा. जगदीशचंद्र बोस को बड़ा दुख हुआ। निवेदिता ने अपने कुछ देशवासियों के इस आचरण पर लज्जा प्रकट की तथा उनकी अनेक पुस्तकें तैयार कराने में भी उनकी सहायता की। साथ ही उसने 'फिलासफिकल ट्रांसेक्शन' में प्रकाशन के लिए लेख तैयार कराने में भी उनकी सहायता की। डा. बोस उन दिनों निवेदिता से रोज ही भेंट किया करते थे। उसने उनकी कृतियों के प्रकाशन के लिए श्रीमती बुल से धनराशि ली। वह यह भी चाहती थी कि एक अनुसंधान-प्रयोगशाला खोली जाए, यद्यपि वह उसे देखने के लिए जीवित नहीं रही, फिर भी बोस-इंस्टीट्यूट खोला गया जो आगे चलकर एक प्रयोगशाला ही नहीं, बल्कि एक मंदिर भी कहलाया। डा. बोस ने इंस्टीट्यूट के उद्घाटन अवसर पर अपने भाषण में कुछ ऐसी महान आत्माओं का उल्लेख किया, जो अब 'दिकलोक' में निवास करती हैं, और जिन्होंने उनकी सहायता की थी। उन्होंने अपने एक पत्र में भी इस बात का उल्लेख किया कि

निवेदिता की भारतीय विज्ञान तथा भारतीय वैज्ञानिकों में दृढ़ विश्वास की भावना ने ही उन्हें इस इंस्टीट्यूट को स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। 'मंदिर की ओर दीपक ले जाती हुई महिला' की मूर्ति में से निकलते हुए फव्वारे के रूप में इस संस्थान में बनाए गए स्मारक को निवेदिता की आत्मा समझा जाता है, जो इसके चारों ओर मंडरा रही है। भगिनी निवेदिता आयु में डा. बोस से छोटी होने के बावजूद उनके लिए रक्षा करने वाली देवात्मा के समान थी। वह डा. और श्रीमती बोस के साथ छुट्टियों में पर्वतीय स्थानों पर जाया करती थी। जब वह कलकत्ता में होती थी, तब अपनी अनेक शामें बोस दंपति के साथ चर्चा तथा कविता पाठ करने में गुजारा करती थी। श्रीमती बोस रूढ़िवादी हिंदू महिलाओं की शिक्षा के लिए निवेदिता द्वारा किए गए कार्य से अत्यधिक प्रभावित हुई थीं, और उन्होंने उससे ब्रह्मों महिलाओं के समक्ष सामयिक विषयों पर व्याख्यान दिलाए। उन्होंने तथा जगदीशचंद्र बोस की बहन लावण्य प्रभा बोस ने कुछ समय तक निवेदिता के स्कूल में पढ़ाया। भगिनी निवेदिता की असामयिक मृत्यु से जगदीशचंद्र बोस को बहुत दुख पहुंचा। वह अपनी वसीयत में निवेदिता के स्मारक के लिए एक लाख रुपए छोड़ गए। श्रीमती बोस ने इस धन का उपयोग विद्यासागर वाणी भवन नामक एक संस्था में एक हाल बनवाने के लिए किया और उसका नाम 'निवेदिता-हाल' रख दिया।

1937 में जगदीशचंद्र बोस की मृत्यु पर रवींद्रनाथ टैगोर ने शांतिनिकेतन में अपने एक भाषण में दिवंगत वैज्ञानिक की ओर से निवेदिता को मिली सहायता का उल्लेख किया। टैगोर स्वयं निवेदिता के घनिष्ठ मित्र थे। जब पहली बार उन दोनों की भेंट हुई, तब टैगोर ने निवेदिता से अनुरोध किया कि वह उनकी पुत्री की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले ले। निवेदिता ने यह कहकर इंकार कर दिया कि बच्ची को हिंदू आदर्शों के अनुसार ही शिक्षा मिलनी चाहिए। यह सुनकर टैगोर को आश्चर्य हुआ, किंतु इससे वह इतना अधिक प्रभावित भी हुए कि उन्होंने निवेदिता के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अपने आदर्शों के अनुसार बच्चों को शिक्षा देने के लिए सहर्ष उनके घर का उपयोग कर सकती है। निवेदिता के पास पहले से ही इतना अधिक काम था कि वह उनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकी। जब निवेदिता ने स्वामी सदानंद के साथ विद्यार्थियों के एक दल को हिमालय भ्रमण के लिए भेजा, तब टैगोर ने अपने पुत्र रथिन को भी उनके साथ भेज दिया। वह अकसर निवेदिता से मिला करते थे, और जैसा कि पहले बताया गया है वह एक बार उसके साथ बोधगया भी गए। निवेदिता ने इतनी बंगला सीख ली थी कि उसने टैगोर की कहानी 'काबुलीवाला' का अंग्रेजी में काफी अच्छा अनुवाद किया। एक बार वह डा. बोस के साथ पूर्वी बंगाल (अब बंगलादेश) के स्यालदाह नामक नगर में गई, जहां टैगोर अकसर ठहरा करते थे। निवेदिता जिस प्रकार से एक मां की भांति ग्रामवासियों से घुलमिल जाया करती थी, उससे टैगोर मंत्रमुग्ध हो गए थे। इसी प्रकार के अनुभवों से वह निवेदिता को 'लोक माता' कहने

लगे थे। यद्यपि निवेदिता से उनके अत्यंत मैत्रीपूर्ण संबंध थे, किंतु टैगोर को व्यावहारिक क्षेत्र में उसके साथ मिलकर काम करना संभव नहीं प्रतीत हुआ। उन्होंने स्पष्ट किया कि उनका मार्ग निवेदिता के मार्ग से भिन्न है; इसके अतिरिक्त उसके स्वभाव में कुछ उग्रता होने के कारण उनके लिए तब तक उसके साथ मिलकर काम करना संभव नहीं था, जब तक कि दोनों में पूर्ण सहमति न हो। इसके बावजूद उन्हें निवेदिता से प्रेरणा मिलती रही और उन्होंने उसकी मृत्यु पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए निवेदिता के उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और इस बात का भी उल्लेख किया कि निवेदिता का स्मरण करने से उन्हें शक्ति मिलती है। निवेदिता ने महाकवि के पिता महर्षि देवेंद्रनाथ से भी भेंट की तथा वह महर्षि के अनुरोध पर स्वामी विवेकानंद के साथ उनसे दुबारा मिली। उसका महाकवि की भतीजी सरला घोषाल से भी घनिष्ठ संबंध था, जो एक साहित्यकार होने के साथ साथ एक महान देशभक्त भी थीं।

सिस्टर निवेदिता को भारतीय कला की प्राचीन परंपरा को पुनर्जीवित करने तथा कला को नया जीवन प्रदान करने की उक्त परंपरा को प्रयोग में लाने की दिशा में किए गए प्रयासों में विशेष सफलता मिली। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, काउंट कोकासू ओकाकूरा उन दिनों भारत में आए हुए थे। उन्होंने निवेदिता में कला का मूल्यांकन करने की गहरी समझ पैदा की। फलतः उसे यह प्रतीत हुआ कि कलकत्ता आर्ट स्कूल की कलाकृतियां कितनी निष्प्राण हैं। निवेदिता की मान्यता थी कि किसी देश की कला की जड़ें अपने देश में ही होनी चाहिए। इसे विदेशी कला का अनुकरण नहीं करना चाहिए। देश-प्रेम, उसके प्रति गौरव की भावना, उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना तथा आत्माभिव्यक्ति की इच्छा ही कलाकार की कलात्मक सर्जना के प्रेरणा-स्रोत होने चाहिए। उसे अनुभव हुआ कि ये सभी गुण भारत में प्रचुर मात्रा में हैं और इन्हें लोक-गीतों, लोक-कला, लोक-नृत्य, हस्तकला तथा इसी प्रकार की अन्य कलाओं में अभिव्यक्ति मिली है। निवेदिता ने अवनींद्रनाथ टैगोर को भी अपने देश के अतीत, वर्तमान और भावी जीवन के प्रति जागरूक रहने की कला के बारे में बताया। अवनींद्रनाथ टैगोर से उसका परिचय ई.बी. हैवल ने कराया था। उसने श्रेष्ठ पाश्चात्य कलाकृतियों को, जिनमें पुनर्जागरण की कलाकृतियां भी थीं, दोबारा प्रकाशित कराया और उनके महत्व पर प्रकाश डालते हुए लेख भी लिखे। जब इंग्लैंड की कुमारी हिरिंघम अजंता-एलोरा के भित्ति-चित्रों की अनुकृतियां बनाने भारत आईं, तो निवेदिता ने अवनींद्रनाथ के दो शिष्य नंदलाल बोस तथा असित कुमार हलदार को भी शैल-चित्रों का अध्ययन करने के लिए उनके साथ अजंता-एलोरा भेजने की व्यवस्था कर दी। वस्तुतया भारतीय कला के कायाकल्प की दिशा में यह एक नया मोड़ था। निवेदिता की प्रेरणा से ही हैवल ने अपनी पुस्तक 'इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग' की रचना की। इसमें उन्होंने इस सिद्धांत का खंडन किया कि भारतीय कला यूनानी कला से प्रभावित है। इसके

लिए उनके यूरोपीय साथियों ने उनकी कड़ी आलोचना की। सुप्रसिद्ध कलाकार तथा कला-समीक्षक आनंद कुमार स्वामी ने भी इस क्षेत्र में निवेदिता को सहयोग दिया। इन तीनों तथा ओकाकूरा ने मिलकर पाश्चात्य विद्वानों के समक्ष भारतीय कला का महान एवं विशिष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया। अवनींद्रनाथ के शिष्य उनके पास आए और उन्होंने 'बंगाल स्कूल ऑव आर्ट' की स्थापना की। 'द इंडियन सोसाइटी ऑव ओरिएंटल आर्ट' की स्थापना 1907 में हुई और इस प्रकार भारतीय कला ने अपने लिए एक नया मार्ग प्रशस्त कर लिया। सिस्टर निवेदिता ने युवा कलाकारों के प्रशिक्षण कार्य में हाथ बंटाया। नंदलाल बोस ने उसके बारे में लिखते हुए उसे मार्गदर्शी फरिश्ता कहा है तथा असित हलदार ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि उन्होंने उससे यह सीखा है कि भारतीय कला के पुनर्स्थापन के लिए काम करना राष्ट्रीय पुनर्जागरण की दिशा में महान योगदान होगा। निवेदिता ने युवा कलाकारों की कृतियों की सभी प्रदर्शनियां देखीं। इस प्रकार की अंतिम प्रदर्शनी उसने फरवरी 1907 में देखी और उसने यह पूर्व घोषणा की कि भारतीय चित्रकला की समस्त विधाओं का भविष्य बहुत उज्जवल है।

निवेदिता के कला-विषयक लेख अधिकांशतया 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित हुए, जिससे उसका परिचय जगदीशचंद्र बोस ने कराया था। उसका 'माडर्न रिव्यू' के सुप्रसिद्ध संपादक रामानंद चटर्जी से काफी घनिष्ठ परिचय हो गया था और उसने उनके काम में उनकी काफी सहायता की। वह पत्रिका में प्रकाशन के लिए केवल लेख ही नहीं देती रही, बल्कि उसने कुछ समय तक उनकी ओर से पत्रिका का संपादन भी किया और उसे साहित्यिक संपर्क का ऐसा मंच बनाया, जिसने देश के सांस्कृतिक जीवन को समृद्धि प्रदान की।

सिस्टर निवेदिता का महान राष्ट्रवादी नेता बिपिनचंद्र पाल से भारत और अमरीका में जो संपर्क रहा, उसके परिणामस्वरूप दोनों एक-दूसरे का सम्मान करने लगे, यद्यपि कभी कभी उनमें तीव्र मतभेद भी हो जाता था। सिस्टर निवेदिता ने विशेष रूप से बोस्टन में हुए धर्मों के वार्षिक सम्मेलन मे बिपिनचंद्र पाल के भाषण की सराहना की। इस सम्मेलन में निवेदिता ने भी भाग लिया था। वे दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए और जब बिपिनचंद्र पाल ने अपनी पत्रिका 'न्यू इंडिया' प्रकाशित की तो निवेदिता उसमें बराबर लेख लिखती रही।

सिस्टर निवेदिता ने डा. दिनेशचंद्र सेन को बंग्ला में उनकी महान कृति 'हिस्ट्री ऑव बंगाली लिट्रेचर' तैयार करने में सहायता की। उसने रमेशचंद्र दत्त से बंग्ला तथा संस्कृत सीखी थी। उन्होंने 'द वेब ऑव इंडियन लाइफ' लिखने में उसकी सहायता की। उसने भी उन्हें 'इक्नामिक हिस्ट्री ऑव इंडिया' लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। जी.एच. नटेसन, श्रीनिवास आयंगर और सुप्रसिद्ध तमिल कवि एवं देशभक्त सुब्रमणयम भारती भी उसके मित्रों में से थे। वह सुब्रमणयम भारती की पत्रिका 'बाल भारत' में लिखा करती थी। यदुनाथ सरकार उसका बड़ा आदर करते थे। उसने उनसे आग्रह किया कि वह विदेशी शासन की

परवाह किए बिना ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन करें। इतिहासकार डा. राधा कुमुद मुखर्जी को निवेदिता से जो प्रोत्साहन मिला, उसे उन्होंने भी स्वीकार किया है। वह ऐसे युवा भारतीयों की गुरु थी, जो देश-सेवा करना चाहते थे। क्रांतिकारी तारकनाथ दास ने अपनी पुस्तक 'जापान एंड एशिया' उसको समर्पित की। दूसरे कई लोगों को भी निवेदिता से ठोस सहायता तथा प्रोत्साहन मिला। तत्कालीन बंगाल के ऐसे अग्रणी पुरुष और महिलाएं उसके मित्र तथा प्रशंसक थे, जो उस प्रदेश के दीप्तिमान नक्षत्र थे।

सिस्टर निवेदिता ने उदार-हृदय यूरोपवासियों को भारतीय जीवन तथा विचारों से परिचित कराने की दिशा में भी कार्य किया। वस्तुतया उसके समर्पित जीवन का लॉर्ड तथा लेडी मिंटो जैसे व्यक्तियों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। इस संबंध में हम 'द स्टेट्समैन' के संपादक एस.के. रैटक्लिफ का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। इसके अलावा और भी बहुत से लोग उससे प्रभावित हुए। 'आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' के एक विद्वान डा. टी.के. चाइन ने निवेदिता की कृतियों से लाभान्वित होने तथा भारतीय विचारधारा के अध्ययन में उसका निजी मार्गदर्शन प्राप्त होने के विषय में लिखा है। संक्षेप में निवेदिता ने अपनी शरण-स्थली—भारत—की हर प्रकार से सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। निवेदिता अल्पायु होते हुए भी आजीवन भारत की सेवा में लगी रही। उसका जीवन भावी पीढ़ियों के लिए देश के जीवन के साथ पूर्ण तादात्म्य तथा देश-सेवा में वास्तविक आत्मोप्लब्धि का एक ज्वलंत उदाहरण है। उसके समकालीन व्यक्तियों ने इस बात की पुष्टि की है कि सिस्टर निवेदिता की वेशभूषा तथा आचरण कितना सादा था और वह किसी भी जनसमूह को किस प्रकार से प्रभावित कर लिया करती थी। इन लोगों ने यह भी बताया कि उसके स्वभाव में कुछ उग्रता भी थी। यह बात उसके संपर्क में आने वाले लोगों को कुछ अटपटी लगती। उनके विचार में उसके स्वभाव में जो उग्रता थी, वह उसकी गहन प्रतिबद्धता तथा दृढ़कर्म-निष्ठा के कारण थी, जिसका पुरुषों, महिलाओं और समकालीन घटनाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

11

साहित्यिक देन

यह वास्तव में बड़े सौभाग्य की बात है कि सिस्टर निवेदिता द्वारा, जिसे भारत से इतना अधिक प्रेम था और जो भारतीय विचारधारा से सुपरिचित थी, लिखित अनेक पुस्तकें तथा लेख उपलब्ध हैं। उनकी इन कृतियों में पाश्चात्य विचारधारा की तुलना में केवल भारतीय जीवन की संपूर्ण वीथि पर ही प्रकाश नहीं डाला गया है, अपितु इनमें तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक आंदोलन की अंतरंग झांकी भी मिलती है। उसकी प्रथम कृति 'काली द मदर' थी, जिसमें काली के उस रुद्ररूप का वर्णन है, जिसमें वह दुखी मानव के समक्ष प्रकट होती है तथा जो मनुष्य को शिशुवत समझ कर उसके साथ खेलती है और प्रेममय संरक्षण प्रदान करती है। इस जटिल अवधारणा को इस पुस्तक में अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है। इस पुस्तक में विषय से संबंधित विभिन्न पक्षों पर भी लेख दिए गए हैं।

'द मास्टर ऐज आई सॉ हिम' को, जिसमें निवेदिता अपने जीवन पर स्वामी विवेकानंद के प्रभाव का वर्णन करती है, समर्थ आलोचकों ने 'कनफेशन्स ऑव सेंट आगस्टीन' के समकक्ष माना है। विवेकानंद के उपदेशों की मर्मज्ञता तथा श्रेष्ठता को पूर्ण रूप से इस पुस्तक में रूपायित किया गया है। 'नोट्स ऑन सम वांडरिंगस' 'द मास्टर ऐज आई सॉ हिम' की सहगामी पुस्तक है। इस पुस्तक में निवेदिता की उन यात्राओं के संस्मरणों का विशद वर्णन है, जो उसने स्वामी विवेकानंद के साथ हिमालय तथा अन्य धार्मिक-स्थानों पर की थीं। पुस्तक रूप में मुख्यतया विवेकानंद पर प्रकाशित उसके अनेक भाषण और लेख समय समय पर सिस्टर निवेदिता द्वारा स्वामी जी के बारे में प्रकट किए गए विचारों का प्रमाण हैं। 'केदारनाथ एंड ब्रदीनारायण पिल्ग्रिम्स डायरी' में उन स्थानों के साथ उनके ऐतिहासिक साहचार्य का अत्यधिक रोचक वर्णन है, जिन्हें निवेदिता देखने गई थी। उसने इस पुस्तक में मार्ग के पड़ने वाले मंदिरों की प्राःकृतिक पृष्ठभूमि तथा उनकी निर्माण-शैली की महता का भी सुंदर वर्णन किया है।

'द वेब ऑव इंडियन लाइफ' का स्थान उच्च कोटि के साहित्य में है। यह पुस्तक ऐसी अनूठी कृति है, जिसमें हिंदू-परिवार तथा सामाजिक गठन की अंतरंग झांकी प्रस्तुत

की गई है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदू समाज के विषय में निवेदिता का जो दृष्टिकोण था, वह तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ा हुआ था। उसने जाति-प्रथा की व्याख्या इस रूप में की कि हर व्यक्ति समाज के प्रति अपना दायित्व पूरा करने के लिए सम्मानपूर्वक अपनी जीवन-पद्धति का अनुसरण करने के लिए वचनबद्ध है, लेकिन उसने लोगों को इस प्रथा में आए दोषों तथा अन्यायों के प्रति सचेत करने की बात कभी नहीं सोची। वह हिंदू-नारी के आत्म-त्याग तथा विधवा द्वारा स्वयं को भाग्य को अर्पित कर देने की गौरवशाली परंपरा और उसकी समर्पित जीवन-पद्धति से अत्यधिक प्रभावित हुई। आधुनिक बुद्धिवादी यह सोच सकता है कि समर्पण तथा त्याग के नाम पर महिलाओं को जो यातना और तिरस्कार झेलना पड़ता है, उससे यह अनभिज्ञ थी। किंतु उसने भारतीय महिलाओं की शिक्षा संबंधी उन कमियों की ओर बार बार ध्यान दिलाया, जिनके कारण उनका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाता। उसे आधुनिक परिस्थितियों का ज्ञान था, जिनमें शिक्षा के अभाव के कारण महिलाएं समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा अपने व्यक्तित्व की संभावनाओं का विकास करने में असमर्थ थीं। निवेदिता के इस निबंध के अंत में इन शब्दों में उसकी असाधारण दूरदर्शिता परिलक्षित होती है :

"उनके जीवन में इस प्रकार का परिवर्तन वैसी ही किसी उथल-पुथल के बाद आएगा, जिसमें से गुजर कर यह राष्ट्र विजयी और तेजस्वी बना है, और यह आने वाली पीढ़ियों के मन पर युग-युगांतर तक अपनी छाप छोड़ जाएगी। किंतु प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार की उथल-पुथल की शुरुआत कहां से होगी?

"इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर में हम अपने-आपको केवल यह आश्वासन दे सकते हैं कि जब ऐसी परिस्थिति हो कि संसार किसी युग-प्रर्वतक विचार को अपनाने के लिए तैयार हो—जैसे कि निश्चित रूप से भारत आज तैयार है—तो समष्टिगत चेतना में उस विचार का प्रादुर्भाव स्वतः ही हो जाता है। पत्थर अपने-आप बोल उठते हैं, और घर-आंगन से यह प्रतिध्वनि होने लगती है, कि लोक-हित की कोई बड़ी लड़ाई शुरु होने वाली है, विचारों और संघर्षों में क्रिया-प्रतिक्रया का द्वंद्व शुरू हो जाता है, और इनका स्वरूप तब अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है, जब तक कि इन दोनों को अंतिम लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती।

"एक जन-भाषा, सस्ते मुद्रण, तार तथा पत्र-लेखन के इस युग में यह बात और अधिक सत्य प्रतीत होती है कि सम्राट अशोक को भारत में जिस प्रक्रिया में दो सौ वर्ष लग सकते थे, उसे अब केवल एक दशक में ही पूरा किया जा सकता है। और जब कभी अंग्रेजों की ओर से कोई बात कही जाती है, तो राष्ट्रीय-स्तर पर एक नेतृत्व की आवश्यकता महसूस होती है।"

इस पर सुखद आश्चर्य होता है कि यह उस महान जागरण की भविष्यवाणी ही थी,

जिसका शुभारंभ सिस्टर निवेदिता द्वारा ये पंक्तियां लिखे जाने के लगभग दस वर्ष बाद ही भारत में महात्मा गांधी की छत्र-छाया में हुआ। इसका एक अपरिहार्य परिणाम यह भी हुआ कि :

"संश्लिष्ट अभिरुचियों के प्रति दृढ़ संकल्प रखने वाली महिला को बहुत अधिक समय तक इस अधिकार से वंचित नहीं रखा जा सकता कि वह सभी वस्तुओं को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में न देखे। मां की दृष्टि सदैव भविष्य पर रहती है। कोई भी महिला यह बात आसानी से समझ सकती है कि एक अकेली-पीढ़ी की पूर्ण पराजय संपूर्ण जाति का उसकी विरासत से संबंध-विच्छेद करने के लिए पर्याप्त है। अतः उसे संकल्प करना होगा और दृढ़ संकल्प करना होगा कि उसकी अपनी संतान की नियति विजय होगी, समर्पण नहीं।

"यदि एक बार कोई पूर्व-देशीय महिला जीवन रूपी नौका की पतवार इस प्रकार से संभाल कर अपने समूचे देश की समस्याओं का समाधान करने लगे, तो इस बात का कौन अनुमान लगा सकता है कि वह आगे चलकर अपने ही कष्टों के निवारण की दुहाई नहीं देगी?"

निवेदिता ने भारतीय समाज को जिस रूप में देखा तथा उसके जिस भावी रूप की कल्पना की, उसका संपूर्ण चित्रण इस पुस्तक में हुआ है।

'ऐन इंडियन स्टडी ऑव लव एंड डेथ' गद्य तथा पद्य दोनों की सुंदर रचनाओं का संकलन है; जिसमें लेखिका के अनुभवों के आधार पर प्रेम तथा मृत्यु की भारतीय संकल्पना दी गई है। 'स्टडीज फ्राम ऐन ईस्टर्न होम' में भारतीय परिवारों में भारतीय जीवन के सूक्ष्म-भेदों का चित्रण है। सिस्टर निवेदिता की कृतियों के दूसरे खंड में उसके व्याख्यान और लेख दिए गए हैं। यह खंड उसकी जन्म-शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित किया गया था। इन कृतियों से केवल विभिन्न विषयों के बारे में ही जानकारी नहीं मिलती है, बल्कि इनसे पाठक का दृष्टिकोण भी उन्नत होता है। इनमें भारत के आध्यात्मिक संदेश का विविध प्रभाव, भारतीय दार्शनिक तथा सामाजिक विचारधारा की प्रगति, इस्लाम की सुंदरता तथा एशिया में इस्लाम जैसे विषयों पर लेख भी शामिल हैं।

इस्लाम को लेकर निवेदिता ने इस बात पर बल दिया है कि इसे भारत को ही अपना घर समझना चाहिए। उसका जीवनवृत्त 'हाऊ एंड व्हाई आई एडाप्टेड द हिंदू रिलीजन' विशेष रूप से रोचक है।

सिस्टर निवेदिता ने भारतीय कला और विभिन्न कलाकारों की कृतियों के बारे में अत्यंत सुंदर व रोचक निबंध तथा लेख लिखे हैं। यूरोपीय कला, विशेषकर पुनर्जागरण-युग से संबंधित मुख्य कृतियों को समझने में उसके इन निबंधों और लेखों से बहुत सहायता मिलती है। 'क्रैडल टेल्स ऑव हिंदूइज्म' की रचनाएं पुरानी कहानियों के समृद्ध भंडार से ली गई हैं, जो हिंदू-जीवन की पृष्ठभूमि को उजागर करती हैं, 'रिलीजन एंड धर्म' नामक पुस्तक

में धर्म के आविर्भाव और प्रभाव पर अनेक निबंध दिए गए हैं। 'एग्रेसिव हिंदूइज्म' में मानव और राष्ट्रीय-चरित्र' के पुनर्निर्माण की दृष्टि से धर्म को सक्रिय बनाने की आवश्यकता का विवेचन किया गया है।

'फुटफाल्स ऑव इंडियन हिस्ट्री' का आरंभ निम्नलिखित सुंदर कविता से होता है:

हे मां! हम अनंत काल से तुम्हारे कोमल
चरणों की सुमधुर ध्वनि—
धरती को यत्र-तत्र स्पर्श करती,
सुनते आए हैं।
तुम्हारे चरण-चिह्नों पर अंकित कमल
ऐतिहासिक नगर हैं!
पुरातन धर्म-ग्रंथ, काव्य और देवालय
दिव्य तपस्चर्या, सत्य की खोज में
कठोर संघर्ष!
हे मां! किस गंतव्य को इंगित करते हैं,
तुम्हारे ये पदचाप?
हमें इनके अर्थ-बोध का अमृत पीने की
शक्ति दो
हमे वह दिव्य-दृष्टि दो कि,
जिससे, यह विचार निर्मूल हो जाए
मानव बहुत महान है
हे मां! किस गंतव्य को इंगित करते हैं,
तुम्हारे ये पदचाप?
हम तुम्हारे शरणागत?
मुक्तिदायिनी,
हे मां!
हम तेरे शिशु,
तुझसे ही पोषित हैं?
हमारे हृदय में सदैव,
तुम्हारी आस्था बनी रहे,
हे भूम्य देवी,
हम तेरे ही हैं!

हे मां! किस गंतव्य को इंगित करते हैं,

तुम्हारे ये पदचाप?

सिस्टर निवेदिता ने जिस प्रकार मानव-चरित्र पर समय और स्थान के प्रभाव को चित्रित किया है, उसकी एक कट्टर मार्क्सवादी भी प्रशंसा ही करेगा। उसने अरब के पैगंबर की एक महान राष्ट्र-निर्माता की भूमिका को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा, जिसने विभिन्न कबीलों को एक महान राष्ट्र के रूप में संगठित कर दिया। इस पुस्तक में इन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का अत्यंत आकर्षक वर्णन है, जो विभिन्न युगों में प्रतिबिंबित हुए और जिन्होंने इतिहास पर अपनी गहरी छाप छोड़ी।

'सिविक आइडियल एंड इंडियन नैशनैलेटी' नामक पुस्तक "राष्ट्रवादी की नित्य-प्रति की इस कामना" से आरंभ होती है :

"मुझे विश्वास है कि भारत एक, अखंड तथा अविभाज्य है। राष्ट्रीय एकता का निर्माण प्रत्येक घर, सामूहिक हित और आपसी प्रेम के आधार पर होता है।

"मेरा विश्वास है कि जिस शक्ति ने वेदों तथा उपनिषदों को वाणी दी, जिसने धर्मों और साम्राज्यों का निर्माण किया, जो विद्वानों की विद्वत्ता में और संतों की भक्ति में प्रकट हुई, वह हममें एक बार पुनः उत्पन्न हुई है और उसका नाम राष्ट्रीयता है।

"मेरा विश्वास है कि भारत के वर्तमान की जड़ें उसके अतीत में गहरी हैं और उसके सामने एक उज्जवल भविष्य है।

"हे राष्ट्रीयता! हर्ष अथवा विषाद के रूप में, सम्मान और लज्जा के रूप में, मेरे पास आओ! मुझे अपना बना लो।"

यह निश्चित रूप से भारतीय राष्ट्रवादी के लिए आज भी उतना ही उचित है, जितना कि उस समय था। सिस्टर निवेदिता इस बात पर जोर देती है कि राष्ट्रीयता का अस्तित्व लोगों में नागरिकता के कर्तव्यों की प्रबल भावना के बिना नहीं बना रह सकता। इस पुस्तक में उक्त स्थिति का सविस्तार वर्णन किया गया है।

'हिंट्स ऑन नेशनल एजुकेशन इन इंडिया' में सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकताओं का उत्कृष्ट विवेचन किया गया है। इस पुस्तक की भूमिका में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए युवा, शिक्षित लोगों द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए अनिवार्य सेवा करने का आह्वान किया गया है। सिस्टर निवेदिता ने इस पुस्तक में जो लेख प्रस्तुत किए हैं, उनमें निम्न बातों पर बल दिया गया है: (1) शिक्षा के स्वरूप को ऐसा बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है; जिससे भारतीय जीवन को अच्छी तरह से समझा जा सके; (2) इसमें ज्ञानार्जन, सामान्य सामाजिक अवधारणाओं तथा पूर्ण मानवीय विकास के लिए मानसिक तैयारी के रूप में शिक्षा के तीन तत्वों का वर्णन भी किया गया है; (3) इसमें बुद्धि के समान ही मनोवेग के प्रशिक्षण पर भी बल दिया गया है; (4) इसमें

राष्ट्र-निर्माण में शिक्षा की उपयोगिता पर भी बल दिया गया है; तथा (5) इसमें राष्ट्रीय इतिहास और भूगोल पर आधारित राष्ट्रीय आदर्शों से शिक्षा को प्रेरित करने का आह्वान किया गया है। सिस्टर निवेदिता ने आगे इसमें विदेशी संस्कृति के भ्रामक उन्माद के बारे में भी लिखा है। उसने इस पुस्तक में अपने परम प्रिय विषय, अर्थात भारतीय महिलाओं के लिए सही किस्म की शिक्षा पर भी एक लेख शामिल किया है। इस लेख के बाद इसी विषय के अनुक्रम में 'द प्रोजेक्ट ऑव द रामकृष्ण स्कूल फार गर्ल्ज' पर एक लेख दिया गया है। 'सजेशन फार द इंडियन विवेकानंद सोसाइटीज' में सामाजिक कार्य के लिए युवकों को प्रशिक्षण देने की पद्धति तथा उसके प्रयोजन के विषय में चर्चा की गई है। 'नोट्स ऑन हिस्टॉरिकल रिसर्च' में इतिहास के छात्रों के लिए उपयोगी बातें कही गई हैं। 'ए नोट ऑन कोआपरेशन' का स्वर सुस्पष्ट है। 'द प्लेस ऑव द किंडरगार्टन इन इंडियन स्कूल्स' में बहुत छोटे बच्चों की शिक्षा का अत्यंत व्यापक तथा रोचक विवेचन किया गया है। 'मैनुअल ट्रेनिंग ऐज ए पार्ट ऑव जनरल एजुकेशन इन इंडिया' पर लिखे गए दो निबंधों से राष्ट्रीय शिक्षा के निबंधों का सार-संग्रह पूरा हो जाता है, जिसके लिए वास्तव में यह पुस्तक लिखी गई है।

'ग्लिंप्सेस ऑव फेमिन एंड फ्लड इन ईस्ट बंगाल इन 1906' इन सुंदर पंक्तियों से आरंभ होती है :

"भारत में भी ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसकी तुलना स्पष्टतया सीमा और उर्वरता की दृष्टि से पूर्वी बंगाल की दूर दूर तक फैली हुई नदियों के मुहानों की भूमि के साथ की जा सकती हो। पश्चिम में कलकत्ता से लेकर पूर्व की ओर चटगांव, और उत्तर की ओर ढाका तथा मैमनसिंह तक बिलकुल गंगा तथा ब्रह्मपुत्र के मुहाने पर देश का यह विशाल त्रिकोण स्थित है, जिसकी प्रत्येक दिशा में नाक की सीध में दूरी लगभग दो सौ मील है। यह क्षेत्र पृथ्वी-ग्रह के धरातल पर प्रकृति के हरे और नीले मनोहारी रंगों से रंगा है। हरा रंग खेतों और वनों, ताड़ और उद्यानों तथा धान का प्रतीक है और शेष प्रत्येक स्थान पर जो नीला रंग है, वह ऊपर आकाश और नीचे जल का द्योतक है। जो लोग हालैंड या वेनिस के बारे में भी जानकारी रखते हैं, वे इसे देखकर उन दूरस्थ स्थानों के सौंदर्य की यादों में खो जाते हैं तथा उन्हें इसमें उसी सौंदर्य के सूक्ष्म प्रतिबिंब की अनुभूति होती है। इस क्षेत्र का उदय भी जल से ही हुआ है, मनुष्य के हाथों नहीं। यह क्षेत्र भी स्वर्ग के अखंड गुंबद के नीचे निष्क्रिय तथा अर्धगर्भित अवस्था में पड़ा हुआ है। यहां भी हरे-भरे मैदानों के पार किसी भी क्षण अचानक सफेद पाल वाला कोई जहाज दिखाई पड़ सकता है और यह आशीर्वाद की वह सम्मोहक शांति भी प्रदान करता है, जो सर्वशक्तिमान की उपस्थिति में एक अत्यंत साधारण व्यक्ति को प्राप्त होती है।"

इस पुस्तक में पश्चिम बंगाल में राहत-कार्य के दौरान लेखिका के अनुभवों का वास्तविक

चित्रण किया गया है। उसके बहुत-से विचारों का पूर्वी बंगाल (अब बंग्लादेश है) की उन समस्याओं से सीधा संबंध है, जिनसे उसे आज भी जूझना पड़ रहा है।

'लैंब्स एमंग वुल्वस' में हिंदू समाज के संबंध में यूरोपीय प्रचारकों के भ्रष्ट-विचारों की तीव्र आलोचना की गई है।

कुल मिलाकर सिस्टर निवेदिता की साहित्यिक कृतियों में भारतीय जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया हैं। इनमें भारतीय समाज की जटिलताओं को गहराई से समझने का प्रयत्न किया गया है। इससे पाठक को उस समूची जीवन-पद्धति को अपने जीवन में उतारने में भी सहायता मिलती है, जिसका विकास भारत की जलवायु, परिस्थितियों, परंपराओं और समस्याओं के आधार पर हुआ है।

ग्रंथ सूची

1. सिस्टर निवेदिता ऑव रामकृष्ण-विवेकानंद : प्रवृजिका आत्मार्पण।
2. निवेदिता : मदाम लिजेली रेमंड (फ्रेंच) : बंग्ला-अनुवाद : नारायणी देवी।
3. लोकमाता निवेदिता (बंग्ला): शंकरी प्रसाद बसु।
4. द कम्पलीट वर्क्स ऑव सिस्टर निवेदिता (चार खंड)।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित